मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 86 ● वर्ष 9, अंक 12 ● फ़रवरी 2020 ● पाँच रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की देशभक्ति का सच 6

सीएए+एनपीआर+एनआरसी सभी के लिए क्यों ख़तरनाक हैं 8-9

संविधान के बारे में सोचने के लिए कुछ अहम सवाल 13

आज़ादी के बाद का सबसे बड़ा जनउभार है सीएए–एनआरसी विरोधी आन्दोलन

इसे सुसंगठित बनाने और दिशा देने की ज़रूरत है

देश की जनता को बाँटने और एक बडी आबादी को सरमायेदारों को दोयम दर्जे का निवासी और सरमायेदारों का गुलाम बना देने के इरादे से देश पर थोपे जा रहे सीएए-एनआरसी के विनाशकारी 'प्रयोग' के विरुद्ध देशव्यापी आन्दोलन सत्ता के सारे हथकण्डों के बावजूद मज़बूती से डटा हुआ है और इसका देश के नये-नये इलाक़ों में विस्तार हो रहा है। दिल्ली का शाहीन बाग इस आन्दोलन का एक प्रतीक बन गया है और दिनो-रात के धरने का उसका मॉडल पूरे देश में अपनाया जा रहा है। भाजपा और संघ गोदी मीडिया के भोंपुओं की मदद से यह साबित करने के लिए पूरा जोर लगाये हुए हैं कि केवल मुसलमान विरोध कर रहे हैं, पर शाहीन बाग सहित हर जगह बडी संख्या में हिन्दू, सिख, ईसाई और अन्य समुदायों के लोग भी आन्दोलन में शिरकत कर रहे हैं। इससे सरकार की बौखलाहट बढती जा रही है और वह किसी न किसी तरह से इसे बदनाम करने और कुचलने की कोशिश में लगी है। दिल्ली विधानसभा चुनाव के बाद ये कोई भारी दमनात्मक कदम भी उठा सकते हैं।

यह आन्दोलन मोदी-शाह-संघ की पिछले 6 साल की कारगुजारियों से उपजे गहरे असन्तोष और जनाक्रोश की भी अभिव्यक्ति है। इस समय पूरे देश का ध्यान सीएए-एनआरसी के विरोध पर है, लेकिन मोदी सरकार देश को बर्बादी की राह पर धकेलने क राह पर लगातार बढ रही है। अर्थव्यवस्था तबाही के कगार पर है, बेरोजगारी सारे रिकॉर्ड तोड रही है, महंगाई ने आम जनता का जीना दूभर कर दिया है। सरकार रिजर्व बैंक तक से सवा दो लाख करोड रुपये हडपने के बावजूद घाटे में है और एक-एक करके सार्वजनिक क्षेत्र के मुनाफे में चल रहे उपक्रमों को भरी बेच डाल रही है।

सीएए-एनआरसी को पूरी तरह से रद्द करने तक इसे जारी रखना जरूरी है। आन्दोलन के दबाव में सरकार अब कह रही है कि पूरे देश में एनआरसी लागू नहीं किया जायेगा। मगर सरकार सिर्फ छल कर रही है। एनआरसी को बस नाम बदलकर लागू कराश जा रहा है। 1 अप्रैल से जनगणना के साथ-साथ एनपीआर यानी राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर तैयार करने का भी काम शुरू हो जाएगा। यह एनपीआर और कुछ नहीं, पिछले दरवाज़े से एनआरसी लागू करने की ही एक कोशिश है। एनपीआर के डेटा से ही एनआरसी तैयार किया जाएगा। (यह देश के सभी गरीबों और मेहनतकशों के लिएकितना विनाशकारी है, इसे जानने के लिए इस अंक में भीतर के पृष्ठों पर विस्तृत सामग्री देखिए।)

सरकार यह सारी कवायद इसलिए कर रही है कि देश भर में शाहीन बाग़ जैसे जो धरने चल रहे हैं, वे किसीतरह से ख़तम हो जायें। इसलिए ज़रूरी है कि ऐसे धरने न सिर्फ़ जारी रहें बल्कि उनको शहर-शहर, गाँव-गाँव क फैलाया जाये। सरकार इन आन्दोलनों में विध्वंसक तत्व घुसाने, तोड़फोड़ करने, जनता को थकाने और मौक़ा पाते ही दमन-चक्र चलाने की रणनीतियों पर काम कर रही है। इन कुचक्रों को क्रान्तिकारी जन-चौकसी और फौलादी एकजुटता के दम पर ही नाक़ाम किया जा सकता है। स्वतःस्फूर्त ढंग से उठ खड़ा हुआ यह जन-उभार समय बीतने के साथ ही ठण्डा न पड़े जाने

सम्पादक मण्डल

और बिखराव का शिकार न हो, इसके लिए ज़रूरी है कि इस आन्दोलन के दहन-पात्र में एक नये क्रान्तिकारी नेतृत्व के ढलने की प्रक्रिया शुरू हो, जन-समुदाय स्वयं संगठित होकर लड़ने का प्रशिक्षण ले और संघर्ष के नेतृत्वकारी दस्ते प्रशिक्षित हों।

भारत की क्रान्तिकारी मजदूर पार्टी (आर.डब्ल्यू.पी.आई.) के साथी दिल्ली में शाहीन बाग, जामिया, चांद बाग और खजूरी सहित विभिन्न जगहों पर धरनों में सक्रिय भागीदारी कर रहे हैं। मुम्बई के मानखुर्द-गोवंडी में मजदूर पार्टी की पहल पर धरना जारी है, हालांकि पुलिस बार-बार दमन करके इसे हटाने की कोशिश कर रही है। इसके अलावा, दिल्ली, मुम्बई, इलाहाबाद, पटना और लखनऊ में नौजवान भारत सभा, दिशा छात्र संगठन और स्त्री मुक्ति लीग के साथी शुरू से ही धरनों में बढचढकर हिस्सेदारी कर रहे हैं। इन संगठनों का मानना है कि इस आन्दोलन की कामयाबी की शर्त है व्यापक एकजुटता और इसके सेक्युलर चरित्र को बनाये रखना। इसी नजरिए से सभी जगहों पर व्यापक पर्चा वितरण और जनसम्पर्क अभियान चलाया जा रहा है जिसमें आम लोगों को सीएए-एनआरसी के विनाशकारी प्रोजेक्ट के बारे में विस्तार से समझाते हुए आन्दोलन से जुडने के लिए कहा जा रहा है।

यह याद रखना होगा कि मौजूदा संघर्ष फासीवाद के ख़िलाफ़ लम्बे संघर्ष की एक कड़ी है और एक दौर है।। किसी मुद्दा-विशेष पर उठ खड़े हुए जन-उभारों से निरन्तरता में चलने वाले सामाजिक आन्दोलन स्वतः नहीं पैदा हो जाते। इसके लिए वैकल्पिक जन-संस्थाओं का निर्माण ज़रूरी होता है। कई बार जाग्रत जन-पहलकदमी के चलते ऐसा स्वतः भी होने लगता है, पर यह प्रक्रिया टिकाऊ और विकासमान तभी हो सकती है जब इसके पीछे सचेतन प्रयास हों।

यह एक बहुत रचनात्मक प्रयोग है कि कई जगहों पर धरना-स्थलों पर पुस्तकालय चल रहे हैं, बच्चों को पढ़ाया जा रहा है, अस्थायी क्लीनिक चल रहे हैं, सांस्कृतिक कार्यक्रम नियमित चल रहे हैं और कार्यशालाएँ चल रही हैं। बेहतर होगा कि रात्रि-पाठशालाएँ भी चलायी जायें और लोगों को उनके क़ानूनी और संवैधानिक अधिकारों के बारे में बताया जाये तथा इतिहास के हवालों से आन्दोलनात्मक कार्रवाइयों की शिक्षा दी जाये। इन सभी कामों को संगठित करने के लिए नागरिकों की संघर्ष कमेटियाँ गठित की जानी चाहिए और इनके बीच आदान-प्रदान के लिए तालमेल कमेटियाँ बनायी जानी चाहिए। आन्दोलन के व्यापक समर्थन-आधार से वित्त जुटाने और वित्तीय प्रबन्धन के लिए विविध स्तरों पर वित्तीय कमेटियाँ और उप-कमेटियाँ बनानी होंगी जो पूरी पारदर्शिता के साथ लोगों की आम सभा में आमदनी और खर्च के ब्योरे नियमित तौर पर प्रस्तुत करती रहें। स्वयंसेवकों की टीमों के भी प्रभारी और उनकी नेतृत्व-कमेटियाँ ज़रूर बनाई जानी चाहिए।

यह काम जटिल और दिक्कतों से भरा हुआ होगा, लेकिन इसे अगर धीरज और सूझबूझ के साथ चलाया जाये तो इस प्रक्रिया में बुर्जुआ राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं वाले निहित स्वार्थी तत्वों की और ख़ानाबदोश तथा अराजक आन्दोलनपंथियों की छँटाई हो सकती है और एक खरा, ईमानदार, जुझारू, मेहनती नेतृत्व तप-निखरकर और परीक्षित होकर सामने आ सकता है। साथ ही बस्तियों, मुहल्लों और गाँवों के तृणमूल स्तर से लोक-पंचायतों जैसी वैकल्पिक जन-संस्थाएँ भी अस्तित्व में आ सकती हैं। ऐसी संस्थाओं के मजबूत स्तम्भों पर खड़े किसी जन-प्रतिरोध को कोई फासिस्ट या बुर्जुआ सत्ता दमन और आतंक के हथकण्डों से कुछ समय के लिए पीछे भले धकेल दे, लेकिन कुचल नहीं सकती। राज्यसत्ता की हथियारबन्द ताकत तभी तक अपराजेय लगती है जबतक कि लोकशक्ति संगठित नहीं होती।

मौजूदा देशव्यापी जन-उभार एक ही साथ प्राइमरी स्कूल से लेकर एक 'ओपन यूनिवर्सिटी' तक सबकुछ है, जिसमें हमें लगन के साथ काम करते हुए जनता से सीखना है। यह वह प्रयोगशाला है जिसमें संघर्षों के नए-नए जन-सृजित रूप कच्चे रूप में हमारे सामने आयेंगे जिनका परिष्कार करके और प्रभावी बनाकर जनता को सौंपने का काम क्रान्तिकारियों का है। जो यह कर सकेगा वही जनता का सच्चा अगुवा होगा।

इतिहास बार-बार यह सिखाता रहा है कि किसी भी स्वतःस्फूर्त संघर्ष में क्रान्तिकारी शक्तियाँ अगर सही सोच और दिशा के साथ भागीदारी करती हैं तो भविष्य के लिए बहुमूल्य अनुभवों और परिपक्वता से समृद्ध होकर आगे आती हैं। व्यवस्था-परिवर्तन का संघर्ष सीधी रेखा में नहीं, बल्कि ज्वार और भाटे की तरह, लहरों के रूप में आगे बढ़ता है और कब कौन-सी लहर निर्णायक चोट करे, यह अभी नहीं कहा जा सकता।

क्या आप मज़दूर बिगुल के रिपोर्टर बनेंगे?

क्या आप चाहते हैं कि मज़दूरों के जीवन, उनके काम के हालात, उनकी समस्याओं और संघर्षों के बारे में आप जैसे देश के करोड़ों मज़दूरों-कर्मचारियों को और देश के आम नागरिकों को पता चले? क्या आप चाहते हैं कि मज़दूरों की ख़बरें जो हर मीडिया से ग़ायब रहती हैं, वे मज़दूरों के अपने अख़बार के ज़रिये लोगों तक पहुँचें?

तो कलम उठाइए और अपने कारख़ाने, दफ़्तर या बस्ती की रिपोर्टें, लेख, पत्र या सुझाव हमें भेजिए।

'मज़दूर बिगुल' आपका अपना अख़बार है। यह उन तमाम मेहनतकशों की आवाज़ है जिनकी बात इस देश के दर्जनों टीवी चैनलों और हज़ारों अख़बारों में कहीं सुनायी नहीं देती, मगर जिनकी मेहनत के बग़ैर यह देश एक दिन भी चल नहीं सकता।

आपको अगर टाइप करने में समस्या है तो काग़ज़ पर लिखकर उसकी फ़ोटो लेकर हमें व्हाट्सऐप पर भेज दीजिए। आप फ़ोन पर, व्हाट्सऐप पर या बिगुल के साथियों से मिलकर भी उन्हें जानकारियाँ दे सकते हैं। इसके बारे में कुछ भी जानने के लिए हमसे सम्पर्क करिए या अपने इलाक़े में 'मज़दूर बिगुल' बाँटने वाले साथियों से बात करिए।

आप इन तरीक़ों से अपनी बात हमारे तक पहुँचा सकते हैं :

डाक से भेजने का पता : **मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020**

ईमेल से भेजने का पता : **bigulakhbar@gmail.com**

व्हाट्सऐप नम्बर : 9721481546

फ़ेसबुक की दुनिया से

शाहीन बाग़ में क्या कहा हमलावर ने? "यहाँ केवल हिन्दुओं की चलेगी।"

तो सुनो हमलावर, अपने घर के किसी बच्चे को बड़े प्राइवेट स्कूल में ले जाओ। साल भर का जितना तुम्हारे घर का बजट होगा, उतनी वहाँ महीने भर की फ़ीस होती है। वहाँ से तुम्हें चलता कर दिया जायेगा। हिन्दुओं की केवल वॉट्सऐप ग्रुप में चलती है।

या ऐसा करना कि अगली बार घर में किसी को बड़ी बीमारी हो, तो बड़े प्राइवेट अस्पताल ले जाना। अगर हिन्दुओं की चलती है, तो डॉक्टर दौड़कर इलाज करेगा। लेकिन वहाँ गार्ड ही तुम्हें दौड़ा देगा क्योंकि जितना पैसा तुमने जवान होने तक ख़र्च किया है, उससे कई गुना वहाँ एक ही बार के इलाज में ख़र्च हो जायेगा।

कहीं लिखकर रख लो। हिन्दुओं की केवल वॉट्सऐप ग्रुप में चलती है। बाक़ी हर जगह उसी की चलती है जिसके पास पैसा है।

– सुयश सुप्रभ

बात उन दिनों की है जब नरेन्द्र नागपुर विष विद्यालय की शाखा में पढ़ता था। शाखा में नरेन्द्र के गुरू थे पण्डित मोहन। एक दिन पण्डित मोहन ने नरेन्द्र से सवाल पूछा।

मोहन गुरू : अगर 1 आम के पेड़ पर 10 केले लगे हों और उनमें से 7 अमरूद तोड़ लिये तो कितने अंगूर बचे?

नरेन्द्र : गुरूजी, 9 हाथी बचे।

मोहन जी (परम् उल्लास के साथ) : वाह भई वाह! क्या बात है। शाबाश। लेकिन इतने कठिन सवाल का जवाब तुझे कैसे पता चला?

नरेन्द्र : गुरूजी, क्यूंकि मैं आज लंच में गोभी की सब्ज़ी लाया हूँ।

मोहन जी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने नरेन्द्र के साथ बैठे अमित को उठाया और बोले : बेटा अमित इस कहानी का सार और शिक्षा तो बताओ।

अमित : गुरूजी, प्रतिदिन ब्रश करना चाहिए नहीं तो पेट्रोल महँगा हो जायेगा।

आज भी नरेन्द्र, अमित और उनके भक्त सीएए और एनआरसी के फ़ायदे इसी तरह बताते हैं।

– नवमीत

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" **– लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।

बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।

सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट

www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमश: उपलब्ध कराये जा रहे हैं। मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर नि:शुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिये भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :

www.facebook.com/MazdoorBigul

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :
मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787, IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

सदस्यता : वार्षिक : 70 रुपये (डाकख़र्च सहित); आजीवन : 2000 रुपये

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :
फ़ोन : 0522-4108495, 9721481546, 9971196111
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 8853093555
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 5/- रुपये वार्षिक – 70/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 2000/- रुपये

एनआरसी लागू नहीं हुआ पर ग़रीबों पर उसकी मार पड़नी शुरू भी हो गयी !

कर्नाटक में सैकड़ों मज़दूरों के घर तोड़े गये, हज़ारों को नागरिकता सिद्ध करने के लिए थाने बुलाया

अमित शाह ने पूरे देश में एनआरसी लागू करने की घोषणा कर दी मगर मोदी ने इसे झूठ बता दिया। रावण दस सिरों से एक साथ बोलता था, मगर एक ही बात बोलता था। भाजपाइयों के अलग-अलग चेहरे अलग-अलग बात बोलते हैं मगर उनका गन्दा इरादा एक ही होता है।

सरकार अब कह रही है कि एनआरसी लागू होना ही नहीं है, मगर भाजपा के नेता यहाँ-वहाँ न केवल एनआरसी का डर दिखा रहे हैं, बल्कि कई जगहों पर अभी से अघोषित एनआरसी लागू होना शुरू हो गया है। कहने की ज़रूरत नहीं कि इसकी मार सबसे ज़्यादा ग़रीबों और मज़दूरों पर पड़ रही है।

जनवरी में बेंगलुरु में एक मज़दूर बस्ती को बंगलादेशियों की बस्ती बताकर उजाड़ दिया गया। मज़दूर बस्ती के ख़िलाफ़ भाजपा सांसद ने शिकायत की थी। बस्ती के पास बने आलीशान अपार्टमेंट के लोगों को इन बस्तियों में रहने वाले लोग तो चाहिए थे ताकि वे उनके घरों में कम मज़दूरी पर काम करते रहें, लेकिन जब वे अपनी ऊँची खिड़कियों से बाहर देखते थे तो ग़रीबों की गन्दी बस्तियाँ देखकर उनका मूड ख़राब हो जाता था। इन्हीं लोगों ने जाकर भाजपा सांसद को उकसाया जिसे अपना साम्प्रदायिक एजेण्डा पूरा करने के लिए मुँहमाँगी मुराद मिल गयी। हालाँकि उन सभी मज़दूरों के पास आधार कार्ड, वोटर कार्ड जैसे काग़ज़ात थे लेकिन उनके पास हरे-हरे नोट नहीं थे। सो पुलिस ने उनके काग़ज़ों को देखने की ज़हमत भी नहीं उठायी और सारे घरों को तोड़ दिया।

इसके कुछ ही दिनों बाद कर्नाटक के कोडागु शहर से ख़बर आयी कि पुलिस ने सारे प्रवासी मज़दूरों को दस्तावेज़ दिखाकर अपनी नागरिकता साबित करने को कहा है। वहाँ पाँच हज़ार से भी ज़्यादा असमी बंगाली मज़दूर काम छोड़कर पुलिस थाने पर लाइन लगाकर काग़ज़ दिखाने पर मजबूर हो गये। पुलिस का कहना था कि अगर मज़दूर ख़ुद आकर काग़ज़ नहीं दिखायेंगे तो फ़रवरी तक छापे मारकर उन्हें पकड़ा जायेगा। ये हज़ारों प्रवासी कामगार, जिनमें ज़्यादातर कोडागु ज़िले में कॉफ़ी बाग़ानों में कार्यरत थे, पिछली 23 जनवरी को अपने पहचान दस्तावेज़ों के साथ पुलिस के सामने लाइन लगाने को मजबूर हुए।

हालाँकि ज़िला पुलिस ने दावा किया कि इस अभियान का नागरिकता के मुद्दे से कोई लेना-देना नहीं था, पर कोडागु में मानवाधिकार कार्यकर्ताओं ने कहा कि पूरा अभियान पश्चिम बंगाल और असम के मुस्लिम प्रवासियों को डराने के लिए चलाया गया था।

यह ज़िला, जो भाजपा और आरएसएस का गढ़ है, संसद में नागरिकता संशोधन अधिनियम (सीएए) पारित होने के बाद से ही तनाव में घिरा हुआ है। यहाँ कई ऐसी घटनाएँ हुई हैं जिनमें संघ और भाजपा के कार्यकर्ताओं ने अपनी ओर से "बंगलादेशी घुसपैठियों" की पहचान करने के नाम पर मज़दूरों को डराया-धमकाया।

21 जनवरी की देर रात को बजरंग दल कार्यकर्ताओं की भीड़ ने नेपोकोलू शहर में एक लॉज में घुसने की कोशिश की, जहाँ लगभग 20 प्रवासी मज़दूर रह रहे थे। लॉज मालिक ने कहा कि भीड़ मज़दूरों को बाहर निकालना चाहती थी। स्थानीय लोगों ने हस्तक्षेप किया और उन्हें इमारत में प्रवेश करने से रोका, वरना कुछ भी हो सकता था।

थाने के बाहर काग़ज़ दिखाने के लिए लाइन में लगे मज़दूर

स्थानीय मज़दूर कार्यकर्ताओं के अनुसार, "20 मज़दूरों में से 14 असम के बंगाली मुसलमान थे। इन सभी के पास एनआरसी के क़ानूनी दस्तावेज़ थे। बाक़ी बिहार के थे। लेकिन भीड़ को यह सब जानने में कोई दिलचस्पी नहीं थी। वे केवल उन्हें निशाना बनाने की कोशिश कर रहे थे क्योंकि वे मुस्लिम थे।

कोडागु में आरटीआई कार्यकर्ता, हारिस अब्दुल रहमान ने कहा कि पुलिस के पास मज़दूरों को बुलाने का कोई क़ानूनी आधार नहीं है और यह कार्रवाई केवल मुसलमानों को डराने की कोशिश है। उन्होंने कहा कि राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में बहुत सारे प्रवासी श्रमिक कार्यरत हैं। पुलिस केवल उन क्षेत्रों में ही क्यों जाती है जहाँ मुसलमान मज़दूर ज़्यादा हैं? हमने इसे बेंगलुरु में देखा और अब यह कोडागु में भी हो फैल रहा है। बेंगलुरु के अपार्टमेंट मालिकों की ही तरह कोडागु के फ़ार्म व बाग़ान मालिक भी चाहते हैं कि ये प्रवासी मज़दूर डरकर रहें। ऐसे में वे मज़दूर के तौर पर अपने वाजिब हक़ की माँग करने की हिम्मत ही नहीं कर पायेंगे। ये घटनाएँ अभी से संकेत दे रही हैं कि आने वाले दिनों में अगर एनआरसी लागू हो गया तो देश के करोड़ों आम लोगों को किन मुसीबतों का सामना करना पड़ेगा। नागरिकता साबित करने की इस प्रक्रिया का सबसे बड़ा शिकार अल्पसंख्यक, दलित, आदिवासी समुदायों के मेहनतकश लोग ही होंगे। उनमें भी जो प्रवासी हैं उनकी ज़िन्दगी तो ग़ुलामों जैसी हो जायेगी।

अभी ही, उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, बंगाल आदि के प्रवासी मज़दूरों के ख़िलाफ़ देश के कई राज्यों में अक्सर ही नफ़रत फैलायी जाती है। गुजरात, महाराष्ट्र से लेकर पंजाब तक में उन पर हमले किये जाते हैं, उन्हें मारा-पीटा और भगाया जाता है। इस सबका मक़सद इन मज़दूरों को डराकर रखना होता है ताकि वे कभी अपने वाजिब हक़ की माँग न कर सकें। ऐसे में अगर पूरे देश में एनआरसी लागू करने की संघी योजना को रोका नहीं गया तो कल्पना की जा सकती है कि ग़रीबों को किस तरह डर-डर कर जीना पड़ेगा। नागरिकता छिन जाने के डर से प्रवासी कामगार सिर झुकाकर मालिकों की मनमानी शर्तों पर काम करने के लिए मजबूर होंगे।

शिवम ऑटोटेक के मज़दूरों की जीत मगर होण्डा के मज़दूरों का संघर्ष 80 दिन बाद भी जारी

शिवम ऑटोटेक लिमिटेड, बिनोला के मज़दूरों व प्रबन्धन के बीच बीती 17 जनवरी की रात उप श्रमआयुक्त की मध्यस्थता में समझौता हो गया। कारख़ाना प्रबन्धन तबादला व निलम्बित किये गये 18 श्रमिकों को काम पर वापस लेने के लिए तैयार हो गया।

शिवम ऑटोटेक के मज़दूर पिछले लम्बे समय से अपना समझौता लागू करवाने, श्रम क़ानूनों के उल्लंघन रोकने आदि मुद्दे को लेकर संघर्षरत थे। श्रमिक सितम्बर माह में लम्बे संघर्ष के बाद श्रम विभाग के समक्ष हुए समझौते को लागू कराने की माँग लागातार कारख़ाना प्रबन्धन से कर रहे थे। किन्तु, श्रमिकों की माँगों पर ध्यान देने के बजाय कम्पनी बदले की भावना से मज़दूरों के ऊपर कार्रवाई में लिप्त रही। कम्पनी ने यूनियन अध्यक्ष, महासचिव समेत 15 मज़दूरों का तबादले के नाम पर गेट बन्द कर दिया। उसके बाद तीन अन्य श्रमिकों को निलम्बित कर दिया गया। कम्पनी के द्वारा की गयी इस कार्रवाई के ख़िलाफ़ तबादला किये गये श्रमिक गुड़गांव स्थित लघु सचिवालय पर धरने पर बैठ गये।

इस दरम्यान श्रम विभाग के समक्ष चले वार्ताओं के कई दौर में कम्पनी अड़ियल रवैय्या अपनाए रही। कम्पनी यूनियन को कमज़ोर करने के मक़सद से श्रमिकों को यूनियन बायपास कर अपनी माँगें रखने के लिए उकसाने लगी। किन्तु, श्रमिकों की एकता व जुझारूपन के सामने उसकी एक ना चली। बीती 7 जनवरी को कम्पनी ने तालाबन्दी करने का प्रयास किया जिसके ख़िलाफ़ श्रमिक कारख़ाना परिसर में ही उत्पादन ठप्प करके बैठ गये। एक शिफ़्ट के श्रमिक कारख़ाने के अन्दर तो वहीं अन्य शिफ़्ट के श्रमिक कारख़ाना दरवाज़े पर तम्बू गाड़ कर बैठ गये। प्रबन्धन ने श्रमिकों को हटाने के लिए कई पैंतरे आज़माये, किन्तु श्रमिक पूरे हौसले के साथ ठण्ड में डटे रहे। कम्पनी ने प्रबन्धन के कर्मचारियों की मदद से उत्पादन जारी रखने का प्रयास किया, किन्तु ठेका श्रमिकों के स्थाई श्रमिकों के पक्ष में होने के कारण वह ऐसा कर पाने में असफल रही। आख़िरकार प्रबन्धन को श्रमिकों की एकता व जुझारूपन के आगे झुककर यूनियन अध्यक्ष, महासचिव, कोषाध्यक्ष समेत 18 श्रमिक जिनका तबादला तथा निलम्बन के नाम पर गेट बन्द कर दिया गया था, उन्हें दुबारा काम पर वापस लेने के लिए तैयार होना पड़ा।

इस बीच होण्डा मोटरसाइकिल्स एण्ड स्कूटर्स से निकाले गये मज़दूरों का संघर्ष यह रिपोर्ट लिखे जाने तक 80 दिन बाद भी जारी था। अनेक मुश्किलों के बावजूद मज़दूर पूरे जुझारूपन के साथ अपना धरना जारी रखे हुए हैं। उन्हें इलाक़े के तमाम मज़दूर साथियों की एकजुटता और सहयोग की ज़रूरत है।

– बिगुल संवाददाता

कार्टून कोना / बीबीसी वेबसाइट पर कीर्तीश का कार्टून

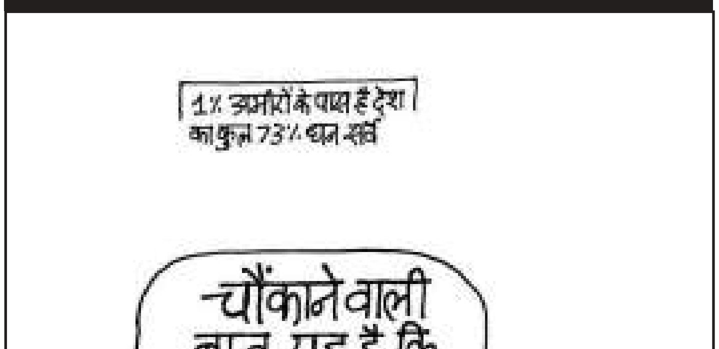

भाजपा शासन के आतंक को ध्वस्त कर दिया है औरतों के आन्दोलन ने!

देश में स्त्रियों की इस सबसे बड़ी राजनीतिक गोलबन्दी की असली ताक़त हैं मेहनतकश औरतें!

लहर

मैं हुआ करती थी एक ठण्डी, पतली धारा
बहती हुई जंगलों,
पर्वतों और वादियों में
मैंने जाना कि
ठहरा हुआ पानी भीतर से मर जाता है
मैंने जाना कि
समुद्र की लहरों से मिलना
नन्ही धाराओं को नयी ज़िन्दगी देता है
न तो लम्बा रास्ता, न गहरे खड्ड
न रुक जाने का लालच
रोक सके मुझे बहते जाने से
अब मैं जा मिली हूँ अन्तहीन लहरों से
संघर्ष में मेरा अस्तित्व है
और मेरा आराम है – मेरी मौत

– मर्ज़िएह ओस्कोई

(ईरानी क्रान्तिकारी कवयित्री जिनकी शाह-ईरान के एजेंटों ने हत्या कर दी थी)

पिछले 6 वर्ष के दौरान मोदी और शाह की अगुवाई में देशभर में एक बर्बर आतंक राज क़ायम किया गया था। मुसलमानों, दलितों, स्त्रियों के विरुद्ध बर्बर-वहशी अपराधों की बाढ़ आ गयी थी। भीड़ को उकसाकर न जाने कितने लोगों को पीट-पीटकर मौत के घाट उतार दिया गया। गुनहगारों को सज़ा देने के बजाय उनका बचाव किया गया, सरकार के मंत्रिगण हत्यारों का महिमामण्डन करते रहे। सरकार के जनविरोधी क़दमों पर आवाज़ उठाने वाले छात्रों-नौजवानों, मज़दूरों-किसानों, बुद्धिजीवियों, सभी का क्रूरता से दमन किया गया। झूठे आरोपों में लोगों को जेलों में क़ैद करके प्रताड़ित किया गया। आवाज़ उठाने वाले हर शख़्स पर सत्ता अपनी पूरी ताक़त से टूट पड़ी ताकि समाज में कोई भी ज़बान खोलने की हिम्मत ही न कर सके।

हर मोर्चे पर बुरी तरह नाकाम यह सरकार जब सीएए क़ानून लेकर आयी और अमित शाह बड़े अहंकार के साथ पूरे देश में एनआरसी लागू करने की घोषणा करते हुए घूम रहे थे, तो भाजपा और संघ में किसी ने कल्पना भी नहीं की होगी कि देश के अवाम से उनको ऐसा करारा जवाब मिलेगा। इसकी शुरुआत इस बार भी छात्रों-नौजवानों के प्रदर्शनों से हुई लेकिन जामिया मिलिया और अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में नृशंस दमन की सारी सीमाएँ पार कर देने के बाद सरकार को लग रहा था कि उसने प्रतिरोध को कुचल दिया है। फिर 19 दिसम्बर को पूरे देश में प्रदर्शन हुए। उत्तर प्रदेश में योगी आदित्यनाथ की पुलिस ने दमन का ऐसा ताण्डव रचा जिसने अंग्रेज़ हुकूमत को भी मात कर दिया।

इसी बीच जामिया पर दमन के विरोध में दिल्ली के शाहीन बाग़ में स्त्रियों का धरना शुरू हुआ जो आज एक ऐसा ताक़तवर आन्दोलन बन गया है जिसने मोदी-शाह-योगी की रातों की नींद हराम कर दी है। उन्हें सोते-जागते शाहीन बाग़ ही नज़र आता है। बौखलाहट में वे पागलों की तरह शाहीन बाग़-शाहीन बाग़ की रट लगाये हुए हैं। आज देश में 50 से भी ज़्यादा जगहों पर शाहीन बाग़ की तर्ज़ पर अनिश्चितकालीन दिनो-रात चलने वाले धरने जारी हैं जिनकी अगुवाई हर जगह औरतें कर रही हैं, और वही इनकी रक्षाकवच भी हैं।

इस आन्दोलन की सबसे बड़ी ताक़त मेहनतकश औरतें हैं। भले ही मंचों पर उनके चेहरे कम नज़र आते हैं, तस्वीरों और वीडियो में वे सिर्फ़ दूर से या पृष्ठभूमि में दिखायी देती हैं, लेकिन वे ही हैं जो सबसे निरन्तरता के साथ, सबसे बहादुरी के साथ और सबसे जुझारूपन के साथ मैदान में टिकी हुई हैं। चाहे पुलिस के हमलों की आशंका में धरनास्थल पर बड़ी तादाद में इकट्ठा होना हो या गिरफ़्तार साथियों को छुड़ाने के लिए थाने का घेराव करना हो, वे ही सबसे आगे रहती हैं। खुले आसमान के नीचे रात-रात भर जागकर वे अपने धरने की अपने बच्चों की तरह हिफ़ाज़त करती हैं।

19 दिसम्बर के बाद से उत्तर प्रदेश में चले भयंकर दमनचक्र में कम से कम 20 लोगों को मौत के घाट उतारने, बच्चों, औरतों और बुज़ुर्गों सहित सैकड़ों को शारीरिक और मानसिक तौर पर ज़ख़्मी करने, हज़ारों को जेल भेजने और सैकड़ों लोगों को करोड़ों की वसूली के नोटिस भेजने के बाद योगी आदित्यनाथ की सरकार इस मुग़ालते में थी कि उसने लोगों की आवाज़ को हमेशा के लिए बन्द कर दिया है, उनकी हिम्मत को तोड़ दिया है। लेकिन कुछ ही दिनों में प्रदेश की जनता ने उनके इस गुरूर को ध्वस्त कर दिया। इलाहाबाद, कानपुर, बरेली आदि कई शहरों में महिलाओं की अगुवाई में शुरू हुए अनिश्चितकालीन धरनों के बाद पिछले शुक्रवार से लखनऊ के ऐतिहासिक घण्टाघर के सामने भी धरना शुरू हो गया जो पुलिस और संघियों की तमाम घटिया चालों के बावजूद हर दिन नई ताक़त हासिल करता गया।

बुरी तरह बौखलाये हुए सत्ताधारियों और उनकी पुलिस ने किसी भी तरह से इस धरने को ख़त्म कराने के लिए हर घटिया हथकण्डा आज़मा लिया। बार-बार भारी पुलिस बल भेजकर उन्हें डराने की कोशिश की गयी। लखनऊ में पुलिस महिलाओं के कम्बल और दरियाँ तक छीन ले गयी। उनके आन्दोलन को बदनाम करने के लिए तमाम तरह के लांछन लगाये जा रहे हैं। कहा जा रहा है कि ये औरतें पाँच सौ रुपये रोज़ाना लेकर धरने में आती हैं, उन्हें मुफ़्त बिरयानी मिल रही है, पाकिस्तान से बड़े पैमाने पर पैसे आ रहे हैं। यह भी कहा गया कि भोली-भाली औरतें बहका ली गयी हैं। मर्द रज़ाई ओढ़कर सो रहे हैं और औरतों को चौराहे-चौराहे पर बैठा रहे हैं। ये सड़े दिमाग़ों वाले संघी औरतों के बारे में यही सोच सकते हैं कि उनकी अपनी कोई सोच-समझ नहीं होती और वे केवल मर्दों के कहने पर चलती हैं।

जिस भी प्रदर्शन में महिलाएँ बढ़चढ़कर भाग लेती हैं, उसमें कई महिलाएँ अपने बच्चों के साथ ही आती हैं चाहे नर्मदा आन्दोलन हो, किसानों के मार्च हों या निर्माण मज़दूरों के आन्दोलन हों। शाहीन बाग़ से लेकर लखनऊ तक के धरनों में भी अनेक महिलाएँ बच्चों के साथ आती हैं। कई जगहों पर वॉलण्टियर इन बच्चों को पढ़ाते हैं, उनके साथ खेलते हैं और उनका ख़याल रखते हैं। मगर आन्दोलन को बदनाम करने के लिए मीडिया में पहले भी ऐसी ख़बरें चलायी जाती रही हैं कि "फ़िलिस्तीन की तर्ज़ पर" बच्चों का "इस्तेमाल" किया जा रहा है। बच्चों को प्रदर्शन में लाने पर क़ानूनी नोटिस भेजे जा रहे हैं। जब पुलिस ने पूरे उत्तर प्रदेश में बच्चों पर बर्बर अत्याचार किये थे तब इनकी ज़ुबान से एक लफ़्ज़ नहीं निकला था। जब मुज़फ़्फ़रनगर में मदरसे के दर्जनों बच्चों के साथ पुलिस हिरासत में यौन अत्याचार की ख़बरें आयी थीं तब इनके मुँह पर ताला पड़ गया था। अभी कर्नाटक में सीएए के विरोध में नाटक में भाग लेने वाले बच्चों और उनकी माँओं पर देशद्रोह का मुक़दमा करने वाले ये हैवान किसी-न-किसी तरह स्त्रियों की हिम्मत को तोड़ देना चाहते हैं।

मगर शाहीन बाग़ से लेकर घण्टाघर तक ये बच्चे ज़िन्दगी के जो सबक़ सीख रहे हैं वह कोई स्कूल-कॉलेज नहीं सिखा सकता। वे सिर्फ़ नारे और गीत ही नहीं सीख रहे हैं, वे दोस्ती, साझेदारी और सामूहिकता भी सीख रहे हैं। उनकी दुनिया बड़ी हो रही है। उन्हें दर्जनों भइया, दीदी, मौसियाँ और नानियाँ मिल गयी हैं। वे जान रहे हैं कि उनकी माएँ और दीदियाँ और दादियाँ जो सरदी में बाहर निकलने पर डाँटती थीं, आज ख़ुद रात-रात भर सरदी में बाहर बैठी हैं क्योंकि ग़लत के ख़िलाफ़ सही की लड़ाई लड़ना और उसके लिए तकलीफ़ें उठाना अच्छी बात है।

जैसाकि एक अख़बार ने अपने शीर्षक में लिखा था, ये महिलाएँ देश के "सबसे घटिया लोगों" से लड़ रही हैं। मगर इन नीच लोगों को इस बात का अहसास नहीं था कि उनका मुक़ाबला अब तक की सबसे जुझारू, सबसे मुखर, सबसे एकजुट और सबसे सचेत स्त्रियों से हुआ है जिनके साथ इस देश के करोडों युवा और आम नागरिक भी उठ खड़े हुए हैं। संघियों और उनकी सरकारों को इन्होंने नाकों चने चबवा दिये हैं।

बड़ी संख्या में ऐसी औरतें आज सड़कों पर हैं जिनके लिए घरों की चौखट लाँघना भी मुश्किल था। वे जानती हैं कि इस बार सरकार ने उनके वजूद पर ही हमला किया है। आम मेहनतकश औरतों के साथ ही बड़े पैमाने पर पढ़ी-लिखी युवा स्त्रियाँ भी सड़कों पर उतरी हैं। वे अद्भुत स्पष्टता और मुखरता के साथ, और बेहद प्रखरता के साथ अपनी बातों को रख रही हैं। उतनी राजनीतिक चेतना देखते ही बनती है। उनके जुझारूपन और हिम्मत के पीछे बरसों से दबा हुआ आक्रोश भी है और इस बात की समझ भी कि संघ और भाजपा जैसा समाज बनाना चाहते हैं उसमें आज़ाद औरत के लिए कोई जगह नहीं है।

शाहीन बाग़ से शुरू हुई लड़ाई आगे कहाँ तक जायेगी, इस बात का फ़ैसला अभी होना है। लेकिन यह तो तय है कि मोदी-शाह का आतंक राज ध्वस्त हो चुका है।

बेरोज़गारी का दानव लील रहा है युवा ज़िन्दगियाँ

हर दिन 35 बेरोज़गार नौजवान कर रहे हैं आत्महत्या!

– रूपा

राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) के आँकड़ों के मुताबिक 2018 में हर दिन औसतन 35 बेरोज़गारों और स्वरोज़गार से जुड़े 36 लोगों ने ख़ुदकुशी की। कुल मिलाकर 2018 में बेरोज़गार और स्वरोज़गार से जुड़े 26,085 लोगों ने जीवन से निराश होकर आत्महत्या कर ली!

हर साल दो करोड़ लोगों को रोज़गार देने का जुमला उछालकर 2014 में सत्ता में आयी मोदी सरकार के कारनामों से रोज़गार बढ़ने के बजाय लगातार घटता गया है। बेरोज़गारी पिछले 45 साल का रिकॉर्ड तोड़ चुकी है। इस सरकार के पास अब लोगों को देने के लिए जुमले भी नहीं रह गये हैं। वे सिर्फ़ इस देश के आम नौजवानों में नफ़रत का ज़हर भरकर उनके हाथों में कट्टे, बम और त्रिशूल थमाकर अपना उल्लू सीधा करना जानते हैं। संघ और भाजपा के सारे नेताओं के बच्चों का तो भविष्य सुरक्षित है, मगर वे जो देश बना रहे हैं, उसमें ग़रीबों और मेहनतकशों के बच्चे सड़कों पर जूते घिस रहे हैं और निराशा में अपनी जान दे रहे हैं।

टेलिकॉम सेक्टर से लेकर रेलवे, बैंक हर जगह नौकरियाँ छीनी जा रहीं हैं और रहे-सहे पदों को भी ख़त्म करने की कवायदें चल रहीं हैं। सरकार की पूरी कोशिश है कि सभी सार्वजनिक उपक्रमों को जर्जर अवस्था में पहुँचाकर उन्हें निजी हाथों में सौंप दिया जाय। ऐसे में साफ है कि बेरोज़गारी और छँटनी की मार अब निजी और सार्वजनिक क्षेत्र के सभी कर्मचारियों पर और भी तेज़ी से पड़ने वाली है।

जनवरी 2019 में एक रिपोर्ट आयी थी कि भारत में बेरोज़गारी दर 6.1 फीसदी हो गई है और यह पिछले 45 सालों में सबसे ज्यादा है। दिसम्बर 2019 में यही आँकड़ा 6.1 से 7.6 फीसद हो गया। इसका साफ़ मतलब है कि जनवरी 2019 से दिसम्बर 2019 के बीच लाखों लोगों का रोज़गार छिन गया।

पिछले 5 सालों में देश के प्रमुख सेक्टरों, जैसे टेक्सटाइल, ऑटोमोबाइल, टेलिकॉम, नग और आभूषण, रियल एस्टेट, विमानन और बैंकिंग से 3.64 करोड़ लोगों की नौकरियाँ चली गयीं। सबसे ज्यादा 3.5 करोड़ नौकरियाँ टेक्सटाइल सेक्टर में गयीं। इसके अलावा नग और आभूषण में 5 लाख, ऑटो सेक्टर में 2.30 लाख, बैंकिंग में 3.15 लाख, टेलिकॉम में 90 हज़ार, रियल एस्टेट में 2.7 लाख और विमानन में 20 हज़ार नौकरियाँ गयी हैं।

दूसरे सेक्टरों की हालत भी कुछ ऐसी ही है। अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण और बड़ी संख्या में रोज़गार पैदा करने वाले सबसे अहम 8 औद्योगिक क्षेत्रों में विकास दर पिछले नवम्बर में शून्य से भी नीचे चली गयी। ऐसे में रोज़गार कहाँ से पैदा होगा। खेती के लगातार गम्भीर होते संकट के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में भी लोगों को रोज़गार नहीं मिल रहा है। मनरेगा के बजट में कटौती के चलते इस योजना से भी लोगों को कम काम मिल पा रहा है।

मोदी सरकार नये रोज़गार सृजन के चाहे जितनी लफ़्फ़ाजी करे वास्तविकता ये है कि सार्वजनिक क्षेत्रों में नई भर्तियां पूरी तरह से रोक दी गयी हैं, जिसकी वजह से पहले से कार्यरत कर्मचारियों पर काम का बोझ दुगना हो गया है। खाली पदों को भरने के बजाय बाहर के लोगों से ठेके पर काम कराया जा रहा है। रिटायर होने वाले कर्मचारियों को फिर से कम वेतन पर सरकारी विभागों में काम करने को मज़बूर किया जा रहा है। निजी और सरकारी विभागों में तेज़ी से छँटनी की प्रक्रिया शुरू हो गयी है। अभी-अभी बीएसएनएल से हज़ारों कर्मचारियों को जबरन वीआरएस देकर रिटायर कर दिया गया है।

सीएमआई की रिपोर्ट के अनुसार दिसम्बर 2017 में देश में 40.79 करोड़ रोज़गार थे जो कि दिसम्बर 2018 में घटकर 39.7 करोड़ रह गये। मात्र एक साल के अन्दर एक करोड़ 10 लाख रोज़गार खत्म कर दिये गये।

आज बेरोज़गारी देश का सबसे बड़ा मुद्दा है, देश में करीब एक-तिहाई लोग बेरोज़गार हैं लेकिन मोदी सरकार के पास इस पर कोई योजना नहीं है। यह बात फ़रवरी 2020 के बजट में भी सामने आ चुकी है। वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने अपने 162 मिनट के बजटीय भाषण में बेरोज़गारी जैसे अहम् मुद्दे को लेकर कोई ख़ास बात नहीं की और ना ही कोई योजना रखी। नौकरियाँ देने के नाम पर लघु, सूक्ष्म और मध्यम उद्योगों और स्टार्टअप को ज़्यादा सहूलियतें देकर रोज़गार सृजन बढ़ाने के जुमले भर उछाले गये। कुल मिलाकर मोदी सरकार नये बजट में भी प्रीपेड मीटर, स्मार्ट सिटी और पीपीपी मॉडल जैसे झुनझुनों को जनता के हाथ में थमा कर बाक़ी अहम मुद्दों से ध्यान भटकाने का ही काम करती रही। लेकिन निजी कम्पनियों का खास ख्याल रखा गया इस बजट में और साथ ही मोदी की सुरक्षा का भी। तभी तो प्रधानमंत्री की एसपीजी सुरक्षा का खर्च 540 करोड़ से बढ़ाकर 600 करोड़ कर दिया गया।

जिस देश का युवा बेरोज़गारी में दर-दर भटक रहा हो, हर दिन 35 युवा बेरोज़गारी से तंग आकर जान दे रहे हों, ऐसे देश में युवाओं को रोज़गार मुहैया कराने और बेरोज़गारी भत्ता देने के बजाय प्रधानमंत्री की सुरक्षा पर जनता का पैसा पानी की तरह बहाया जाये ये अपने आप में बहुत बड़ा सवाल है।

दुनिया का सबसे युवा देश कहे जाने वाले भारत की हालत ये है कि यहाँ युवाओं की उर्जा और क्षमता का कोई मोल नहीं। किसी देश के लिए ये बहुत गौरव की बात होनी चाहिए कि वहाँ सबसे ज़्यादा युवा आबादी है, लेकिन हमारे यहाँ युवा को दर-दर की ठोकरें, हताशा, झूठे वादों और ख़ुदकुशी करने के हालात के सिवा क्या मिलता है?

देश के युवाओं को बेहतर शिक्षा, बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएँ और रोज़गार मिले तो उनकी क्षमताएँ देश को तरक़्क़ी की राह पर ले जाती हैं। लेकिन एक फ़ासीवादी सरकार से ऐसी उम्मीद करना नासमझी है।

आज मोदी सरकार के पास बेरोज़गारी का कोई समाधान नहीं है। इसलिए आज एनआरसी, सीएए और एनपीआर जैसे नकली मुद्दों को उभारा जा रहा है। सोचने वाली बात ये है कि जहाँ इस देश की आबादी को शिक्षा, रोज़गार जैसे बुनियादी मुद्दों के लिए सड़कों पर उतरना चाहिए वहाँ आज देश की महिलाएँ, बच्चे और नौजवान एनआरसी, सीएए और एनपीआर के ख़िलाफ़ अपने वजूद के लिए लड़ने पर मजबूर कर दिये गये हैं।

देश में ज्यों-ज्यों आर्थिक संकट गहराता जा रहा है रोज़गार की हालत बद से बदतर होती जा रही है। हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि इसका समाधान निजीकरण नहीं है और ना ही इसका निदान पूँजीवादी व्यवस्था के पास है। छँटनी, तालाबन्दी और बेरोज़गारी को बनाये रखने की प्रक्रिया पूँजीवाद के बने रहने की शर्त है। यह आर्थिक संकट पूँजीवाद का ढाँचागत संकट है और यह पूँजीवाद के ख़ात्मे के साथ ही जायेगा। इसलिए रोज़गार के हक़ की लड़ाई के साथ-साथ इस व्यवस्था को बदलने की लड़ाई को भी तेज़ करने की ज़रूरत है।

अगर तुम युवा हो! - तीन

जहाँ स्पन्दित हो रहा है बसन्त
हिंस्र हेमन्त और सुनसान शिशिर में
वहाँ है तुम्हारी जगह
अगर तुम युवा हो!
जहाँ बज रही है भविष्य-सिम्फ़नी
जहाँ स्वप्न-खोजी यात्राएँ कर रहे हैं
जहाँ ढाली जा रही हैं आगत की साहसिक परियोजनाएँ,
स्मृतियाँ जहाँ ईंधन हैं,
लुहार की भाथी की कलेजे में भरी
बेचैन गर्म हवा जहाँ ज़िन्दगी को रफ़्तार दे रही है,
वहाँ तुम्हें होना है
अगर तुम युवा हो!
जहाँ दर-बदर हो रही है ज़िन्दगी,
जहाँ हत्या हो रही है जीवित शब्दों की
और आवाज़ों को कैद-तनहाई की
सजा सुनायी जा रही है,
जहाँ निर्वासित वनस्पतियाँ हैं
और काली तपती चट्टानें हैं,
वहाँ तुम्हारी प्रतीक्षा है
अगर तुम युवा हो!
जहाँ संकल्पों के बैरिकेड खड़े हो रहे हैं
जहाँ समझ की बंकरें खुद रही हैं
जहाँ चुनौतियों के परचम लहराये जा रहे हैं
वहाँ तुम्हारी तैनाती है
अगर तुम युवा हो।

अगर तुम युवा हो - छह

जब तुम्हें होना है
हमारे इस ऊर्जस्वी, सम्भावनासम्पन्न,
लेकिन अँधेरे, अभागे देश में
एक योद्धा शिल्पी की तरह
और रोशनी की एक चटाई बुननी है
और आग और पानी और फूलों और पुरातन पत्थरों से
बच्चों का सपनाघर बनाना है,
तुम सुस्ता रहे हो
एक बूढ़े बरगद के नीचे
अपने सपनों के लिए एक गहरी कब्र खोदने के बाद।
… … …
तुम हो प्यार और सौन्दर्य और नैसर्गिकता की
निष्कपट कामना,
तुम हो स्मृतियों और स्वप्नों का द्वन्द्व,
तुम हो वीर शहीदों के जीवन के वे दिन
जिन्हें वे जी न सके।
इस अँधेरे, उमस भरे कारागृह में
तुम हो उजाले की खिड़कियाँ,
अगर तुम युवा हो!

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की देशभक्ति का सच

आरएसएस और उसकी पार्टी, यानी भाजपा, इस समय देशभक्ति के सबसे बड़े ठेकेदार बने हुए हैं। मोदी सरकार की कारगुज़ारियों के ख़िलाफ़ अगर इस देश का कोई भी नागरिक आवाज़ उठाता है, तो उसे "देशद्रोही" करार दिया जाता है। मगर ख़ुद इनकी देशभक्ति की सच्चाई क्या है? पिछले छह वर्षों में मोदी सरकार ने किस तरह से देश की जनता के ख़िलाफ़ काम किया है, और किस तरह से मुट्ठीभर देशी-विदेशी पूँजीपतियों के हाथों इस देश की सम्पदा को बेचा है, उसकी बात तो हम करते ही रहे हैं। मगर आज बात-बात पर देशभक्ति का प्रमाण-पत्र बाँटने वाले संघ-भाजपा गिरोह की असलियत जानने के लिए हमें एक बार स्वतन्त्रता आन्दोलन में इनकी करतूतों के इतिहास पर भी नज़र डाल लेनी चाहिए।

स्वतन्त्रता आन्दोलन से आरएसएस का विश्वासघात

1925 में विजयदशमी के दिन अपनी स्थापना से लेकर 1947 तक संघ ने अंग्रेजों के खिलाफ चूँ तक नहीं किया। जब अंग्रेजों के खिलाफ देश की जनता लड़ रही थी तब संघी लोगों को लाठियाँ भाँजना सिखा रहे थे और वह भी अंग्रेजों के खिलाफ नहीं बल्कि अपने ही देशभाइयों के खिलाफ़। आरएसएस के संस्थापक सरसंघचालक केशव बलिराम हेडगेवार, दूसरे सरसंघचालक एम-एस- गोलवलकर और हिन्दुत्व के प्रचारक विनायक दामोदर सावरकर ने आजादी की लड़ाई से लगातार अपने को दूर रखा। यही नहीं जब भगतसिंह और उनके साथी अंग्रेज सरकार से यह माँग कर रहे थे कि उन्हें फाँसी नहीं बल्कि गोली से उड़ा दिया जाये तब सावरकर अंग्रेजी हुकूमत को माफ़ीनामे पर माफ़ीनामे लिख रहे थे। जब देश में लाखों लोगों की चेतना में आज़ादी की लड़ाई में शरीक होने का विचार सबसे प्रमुख था, उस समय आरएसएस ने न तो स्वतंत्रता आन्दोलन में भागीदारी की और न ही भागीदारी करने की चाहत रखने वालों को ही प्रोत्साहित किया। संघ के कार्यकर्ता और भूतपूर्व प्रधानमंत्री अटलबिहारी तो गोरी हुकूमत का विरोध करने वालों की मुखबिरी में शामिल थे। **सोचने वाली बात है कि आज इन्हें लोगों को देशभक्ति के प्रमाणपत्र बाँटने का ठेका किसने दे दिया?**

आरएसएस की आजादी के संघर्ष से विश्वासघात को समझने के लिए हम एक बार उसी के नेताओं के लेखन और भाषणों को देखें। असहयोग आन्दोलन (1920-21) भारत की आजादी में एक बड़ा आन्दोलन था जिसने एक बार देश की जनता की आजादी की चाह को मुखर अभिव्यक्ति दी लेकिन 'गुरूजी' के नाम से जाने जाने वाले सरसंघचालक गोलवलकर इस संघर्ष में शामिल नौजवानों के पक्ष की जगह कानून और व्यवस्था की चिंता जाहिर करते हैं। जैसे कोई अंग्रेज अधिकारी या शासक की चिन्ता हो। वह कहते हैं:

'संघर्ष के बुरे परिणाम हुआ ही करते हैं। 1920-21 के आन्दोलन (असहयोग आन्दोलन) के बाद लड़कों नें उद्दण्ड होना आरम्भ किया, यह नेताओं पर कीचड़ उछालने का प्रयास नहीं है। परन्तु संघर्ष के बाद उत्पन्न होने वाले ये अनिवार्य परिणाम हैं। बात इतनी ही है कि उन परिणामों को काबू में रखने के लिए हम ठीक व्यवस्था नहीं कर पाये। सन् 1942 के बाद तो कानून का विचार करने की आवश्यकता ही नहीं, ऐसा प्रायः लोग सोचने लगे'। ('श्री गुरूजी समग्र दर्शन', खंड-4,पृष्ठ 41,भारतीय विचार साधना, नागपुर, 1981)

गोलवलकर के अनुसार 'संघर्ष के परिणाम बुरे' ही होते हैं। तो क्या भारतीय जनता आजादी के लिए संघर्ष नहीं करती? अपने ऊपर जुल्म ढाहने वाले कानूनों के प्रति भारतीय नौजवान चुप बैठते? उनका सम्मान करते? अंग्रेजों के कानून और व्यवस्था की चिन्ता करने वाले गोलवलकर कम से कम यही राय रखते हैं। गोलवलकर ने संघ की स्वतन्त्रता आन्दोलन से अलग रहने की नीति पर मुस्तैदी से अमल किया। 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन के समय भी उन्होनें यही रुख अपनायाः

'1942 में भी अनेकों के मन में तीव्र आन्दोलन था। उस समय भी संघ का नित्य कार्य चलता रहा। प्रत्यक्ष रूप से संघ ने कुछ न करने का संकल्प किया। परंतु संघ के स्वयंसेवकों के मन में उथल-पुथल चल ही रही थी। संघ यह अकर्मण्य लोगों की संस्था है, इनकी बातों में कुछ अर्थ नहीं, ऐसा केवल बाहर के लोगों ने ही नहीं, कई अपने स्वयंसेवकों ने भी कहा। वे बड़े रुष्ट भी हुए।' ('श्री गुरूजी समग्र दर्शन', खंड-4, पृष्ठ 40, भारतीय विचार साधना, नागपुर, 1981)

1942 के आन्दोलन के समय गोलवलकर संघ संचालक थे। जब देश की जनता का देशप्रेम, आजादी के संघर्ष में अपना सबकुछ बलिदान करने की तीव्र इच्छा थी। लोग गुलामी की जंजीरों को तोड़कर आजाद होने के लिए लड़ रहे थे तो संघ ने क्या किया? **'संघ ने कुछ न करने का संकल्प किया'। क्योंकि अंग्रेज भक्ति ही उनकी देशभक्ति थी।** 9 मार्च 1960 को इंदौर, मध्यप्रदेश में आरएसएस के कार्यकर्ताओं की एक बैठक को सम्बोधित करते हुए गोलवलकर ने कहाः

"नित्यकर्म में सदैव संलग्न रहने के विचार की आवश्यकता का और भी एक कारण है। समय-समय पर देश में उत्पन्न परिस्थितियों के कारण मन में बहुत उथल-पुथल होती ही रहती है। सन् 1942 में ऐसी उथल-पुथल हुई थी। उसके पहले सन् 1930-31 में भी आन्दोलन हुआ था। उस समय कई लोग डाक्टर जी (हेडगेवार) के पास गये थे। इस 'शिष्टमंडल' ने डाक्टर जी से अनुरोध किया कि इस आन्दोलन से स्वातंत्र्य मिल जायेगा और संघ को पीछे नहीं रहना चाहिए। उस समय एक सज्जन ने जब डाक्टर जी से कहा कि वे जेल जाने के लिए तैयार हैं, तो डाक्टर जी ने कहा – "जरूर जाओ। लेकिन पीछे आपके परिवार को कौन चलायेगा ?'' उस सज्जन ने बताया- 'दो साल तक केवल परिवार चलाने के लिए ही नहीं तो आवश्यकता अनुसार जुर्माना भरने की भी पर्याप्त व्यवस्था उन्होंने कर रखी है।' तो डाक्टर जी ने कहा, 'आपने पूरी व्यवस्था कर रखी है तो अब दो साल के लिए संघ का ही कार्य करने के लिए निकलो।' घर जाने के बाद वह सज्जन न जेल गये न संघ का कार्य करने के लिए बाहर निकले।'' (श्री गुरूजी समग्र दर्शन', खंड-4, पृष्ठ 39-40, भारतीय विचार साधना, नागपुर, 1981)

दरअसल आरएसएस के संस्थापक हेडगेवार, गोलवलकर या 'हिन्दुत्व' के प्रचारक इस गिरोह का कोई भी नेता हो उसने अंग्रेजों के खिलाफ आजादी की लड़ाई में एक ओर तो खुद भाग नहीं लिया वहीं दूसरी ओर उन्होंने आम भारतीय को भी जो इनके सम्पर्क में था अपनी तरफ से पूरी कोशिश की कि वह अंग्रेजों के खिलाफ स्वतन्त्रता आन्दोलन में शरीक न ही हो। हेडगेवार ने एक बार संघ की तरफ से नहीं परंतु व्यक्तिगत रूप से नमक सत्याग्रह में भाग लिया, लेकिन इसके बाद उन्होंने आजादी के लिए चल रहे किसी संघर्ष में भाग नहीं लिया। गोलवलकर अंग्रेज शासकों को विजेता मानते थे और उनकी दृष्टि में विजेताओं का विरोध न करके उनके साथ अपनापन रखना चाहिए।

"एक बार एक प्रतिष्ठित वृद्ध सज्जन अपनी शाखा में आये। वह संघ के स्वयंसेवकों के लिए एक नूतन सन्देश लाये थे। उनको शाखा के स्वयं सेवकों के सम्मुख बोलने का अवसर दिया गया तो अत्यन्त ओजस्वी स्वर में वे बोले- 'अब तो केवल एक काम करो। अंग्रेजों को पकड़ो और मार-मार कर निकाल बाहर करो। इसके पश्चात फिर देखा जायेगा।' इतना ही कहकर बैठ गए। इस विचारधारा के पीछे है- राज्यसत्ता के प्रति द्वेष तथा क्षोभ की भावना एवं द्वेषमूलक प्रतिक्रियात्मक प्रवृत्ति। आज की राजनैतिक भावविपन्नता का यही दुर्गुण है कि उसका आधार है प्रतिक्रिया, द्वेष तथा क्षोभ, और अपनापन छोड़कर विजेताओं का विरोध।" ('श्री गुरूजी समग्र दर्शन', खंड-4, पृष्ठ 109-110, भारतीय विचार साधना, नागपुर, 1981)

गोलवलकर की नजर में, जो कि आरएसएस के 'दार्शनिक- गुरू' की तरह माने जाते हैं, ब्रिटिश हुकूमत के प्रति भारतीय जनता के मन में द्वेष रखना ठीक नहीं है!! ये सज्जन न ही उनका विरोध करने को कहते हैं, तो क्या अपने ऊपर जोर-जुल्म करने वाली अंग्रेजी सत्ता से भारत की जनता प्यार करती, उन्हें गले लगाती?

आजादी के संघर्ष के दौरान जब आरएसएस ने लगातार लोगों को आजादी की लड़ाई से दूर रखने और खुद संघर्ष में भाग नहीं लेने का फैसला लिया उसी समय शहीद भगतसिंह और उनके साथी देश के नौजवानों से आजादी के लिए अलख जगाने और क्रान्ति का संदेश देश के हर कोने तक पहुँचाने की अपील कर रहे थे।

हिन्दुत्व के प्रचारक और आरएसएस के करीबी संघ-भाजपा गिरोह के पूज्य सावरकर अंगेजों को माफ़ीनामे पर माफ़ीनामे लिख रहे थे। भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने जेल से देश के नौजवानों के नाम यह संदेश भेजा जो 19 अक्टूबर 1929 को पंजाब छात्र संघ के दूसरे अधिवेशन में पढ़कर सुनाया गया जिसकी अध्यक्षता नेताजी सुभाष चन्द्र बोस कर रहे थे। उन्होंने नौजवानों से अपील कीः

"नौजवानों को क्रान्ति का यह संदेश देश के कोने-कोने में पहुँचाना है, फैक्ट्री कारखानों के क्षेत्रों में, गन्दी बस्तियों और गाँवों की जर्जर झोपड़ियों में रहने वाले करोड़ों लोगों में इस क्रान्ति की अलख जगानी है जिससे आजादी आयेगी और तब एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य का शोषण असम्भव हो जायेगा।" ('भगतसिंह और उनके साथियों के उपलब्ध सम्पूर्ण दस्तावेज', सं- सत्यम, पृष्ठ- 359)

आज यही संघ-भाजपा गिरोह एक ओर लोगों को देशप्रेम का प्रमाणपत्र दे रहा है वहीं दूसरी ओर देश के सच्चे शहीदों के विचारों को जनता से दूर रखने की कोशिश कर रहा है और

(पेज 12 पर जारी)

जनता के सच्चे नायकों और फासीवादियों में अन्तर

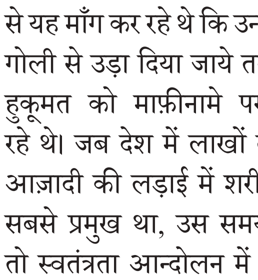

लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए वर्ग-चेतना की ज़रूरत है। ग़रीब मेहनतकश व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन पूँजीपति हैं, इसलिए तुम्हें इनके हथकण्डों से बचकर रहना चाहिए और इनके हत्थे चढ़ कुछ न करना चाहिए। संसार के सभी ग़रीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही हैं। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताक़त अपने हाथ में लेने का यत्न करो। इन यत्नों में तुम्हारा नुक़सान कुछ नहीं होगा, इससे किसी दिन तुम्हारी जंजीरें कट जायेंगी और तुम्हें आर्थिक स्वतन्त्रता मिलेगी।

– भगतसिंह

(साम्प्रदायिक दंगे और उनका इलाज)

ये देखिये, मोदी के गुरुजी के विचार क्या थे...

"हिन्दुओ, ब्रिटिश से लड़ने में अपनी ताक़त बर्बाद मत करो। अपनी ताक़त हमारे भीतरी दुश्मनों यानी मुसलमानों, ईसाइयों और कम्युनिस्टों से लड़ने के लिए बचाकर रखो।"

– एम.एस. गोलवलकर

(आर.एस.एस. के दूसरे सरसंघचालक)

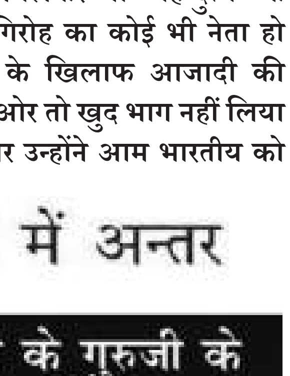

सरकार की धोखेबाज़ी से सावधान! एनपीआर ही एनआरसी है!

सिविल नाफ़रमानी की राह चलेंगे! एनपीआर फ़ॉर्म नहीं भरेंगे!

पूरे देश में नागरिकता संशोधन कानून (सीएए), राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर (एनआरसी), राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर (एनपीआर) के विरोध में चल रहे तूफ़ानी आन्दोलन के कारण, मोदी-शाह की जोड़ी और सरकार में खलबली मची हुई है। सत्ताधारी लोग गिरगिट की तरह रंग बदल रहे हैं। गृहमन्त्री अमित शाह ने बार-बार कहा, 'आप क्रोनोलॉजी समझिये, पहले सीएए आयेगा, फिर एनआरसी को पूरे देश में लागू किया जायेगा!' इसके जवाब में शाहीन बाग, दिल्ली की बहादुर औरतों ने एक ऐसा आन्दोलन खड़ा किया जो देश भर में संघर्ष की मिसाल बन गया। थोड़े समय में ही देश में 50 से भी ज़्यादा जगहों पर शाहीन बाग जैसे ही दिनो-रात चलने वाले धरने शुरू हो गये। छोटे क़स्बों से लेकर बड़े महानगरों तक पिछले डेढ़ महीने से लाखों लोग लगातार सड़कों पर हैं।

मगर सरकार जनता की बात सुनने के बजाय सिर्फ़ झूठ बोल रही है और धमकियाँ दे रही है। ख़ुद प्रधानमन्त्री मोदी ने हमेशा की तरह झूठ बोलते हुए कहा कि उनकी सरकार में एनआरसी की तो कोई बात ही नहीं हुई है! लेकिन इसी बीच साज़िशाना तरीके से सरकार ने 1 अप्रैल 2020 से एनपीआर शुरू करने की घोषणा कर दी। इस पर लोगों ने जवाब दिया कि वे इसके लिए 'काग़ज़ नहीं दिखायेंगे!' इस ज़बर्दस्त विरोध से घबराकर मोदी सरकार ने अब कहा कि 'आपसे कोई दस्तावेज़ नहीं माँगे जायेंगे!' इस पर हमारे जुझारू आन्दोलन ने कहा कि 'हम एनपीआर में पूछे जा रहे सवालों का जवाब नहीं देंगे!' सरकार ने यह बात भी मान ली कि आप जिस सवाल का जवाब देना चाहें, सिर्फ़ उसी का जवाब दें! मोदी सरकार धीरे-धीरे पीछे हट रही है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि सरकार की साज़िशें थम गयी हैं और यह अपने नापाक मंसूबों से बाज़ आ गयी है? ऐसा सोचना हमारी भारी भूल होगी।

किसी धोखे में न रहें, असल में एनपीआर ही एनआरसी का पहला कदम है!

दोस्तो! पहली बार 2003 में वाजपेयी सरकार ने नागरिकता क़ानून में बदलाव और फिर एनपीआर और एनआरसी लाने की बात की थी। इसी क़ानून के आधार पर 'नागरिकता नियम 2003' बनाये गये जिसका चौथा नियम साफ़ कहता है कि **एनआरसी की प्रक्रिया का पहला क़दम एनपीआर है। एनपीआर के ज़रिए इकट्ठा की गयी जानकारियों से ही एनआरसी तैयार होगा।** इसके लिए

• विभिन्न जनसंगठनों की ओर से जारी पर्चा

सरकार देश में एक रजिस्ट्रार जनरल आफ़ सिटिज़नशिप रजिस्ट्रेशन नियुक्त करेगी, उसके नीचे ज़िला रजिस्ट्रार और उसके नीचे तहसील रजिस्ट्रार होंगे। तहसील रजिस्ट्रार का दफ्तर एनपीआर के फ़ॉर्म भरवायेगा। उसके ही आधार पर स्थानीय स्तर का एनआरसी तैयार किया जायेगा। जिसका नाम एनआरसी में नही होगा, वे पहले तहसील रजिस्ट्रार के पास अपील करेंगे जो 90 दिना (या ज़्यादा) में अन्तिम फ़ैसला लेगा और फिर दूसरी सूची प्रकाशित होगी। इसके बाद तहसील रजिस्ट्रार इस सूची पर 30 दिनों तक आपत्तियाँ मँगवायेगा और फिर 90 दिनों में वह अन्तिम सूची ज़िला रजिस्ट्रार को देगा। इस सूची में जिनका नाम नहीं होगा वे 30 दिनों के अन्दर ज़िला रजिस्ट्रार के पास अपील करेंगे जोकि 90 दिनों के अन्दर ज़िले की अन्तिम सूची दे देगा। इसमें नाम नहीं आने पर आपको विदेशी लोगों के लिए बने ट्रिब्यूनल के सामने अपील करनी पड़ेगी। उसके बाद हाई कोर्ट या सुप्रीम कोर्ट के अनेक चक्कर काटने पड़ेंगे। **अगर तब भी आप एनआरसी में शामिल नहीं हो पाये तो आपको डिटेंशन सेंटर में डाल दिया जायेगा, वोट देने समेत आपके सारे नागरिक अधिकार छीन लिये जायेंगे।** सेंटरों में आपसे ग़ुलामों की तरह काम करवाया जायेगा और बेहद ख़राब हालात में रखा जायेगा। इसकी एक बानगी असम के डिटेंशन सेंटरों के रूप में हमारे सामने है जहाँ ख़ुद सरकार के मुताबिक अब तक 30 लोगों की मौत हो चुकी है।

सरकार एनपीआर करने के बाद आपसे दोबारा कुछ पूछने या फ़ॉर्म भरवाने नहीं आयेगी। एनपीआर के आधार पर ही एनआरसी तैयार की जायेगी और अगर आपका नाम उसमें नहीं शामिल हो पाया, तो आपकी ज़िन्दगी नरक बन जायेगी। अगर किसी तरह आप डिटेंशन सेंटर में जाने से बच भी गये तो भी आपके सारे अधिकार छीन लिये जायेंगे। आप राशन कार्ड, गैस कनेक्शन, फ़ोन कनेक्शन नहीं ले पायेंगे, किसी सरकारी योजना का आपको लाभ नहीं मिलेगा, बैंक में खाता नहीं खुलेगा। आप पूरी तरह सरकारी एजेंसियों के रहमोकरम पर होंगे और आपकी ज़िन्दगी हमेशा डर के साये में गुज़रेगी। ऐसे में आप जीने के लिए कुछ भी करने को मजबूर हो जायेंगे और कौड़ियों के मोल पर आपसे मनमाना काम कराया जा सकेगा।

इसलिए एनपीआर का फ़ॉर्म भरने का मतलब है, सरकार को एनआरसी करने की इज़ाजत देना। मोदी सरकार धोखे से एनपीआर के ज़रिये देश भर में एनआरसी करने जा रही है। हमें किसी भी कीमत पर एनपीआर में शामिल नहीं होना है। हम सिविल नाफ़रमानी यानी नागरिक अवज्ञा करते हुए इसका फ़ॉर्म भरने से इंकार करेंगे और फ़ॉर्म न भरने पर लगाये जाने वाले 1000 रुपये का जुर्माना भरने से भी इंकार करेंगे। **लोकतंत्र में जनता का स्थान सबसे ऊपर होता है और सरकार के ग़लत क़दमों को मानने से इंकार करना हमारा हक़ है। अगर हर सरकारी फ़ैसले को, और संसद में पास होने वाले हर क़ानून को लोग सर झुकाकर मान लेते तो दुनिया में आज भी ग़ुलामी क़ायम रहती और औरतों तथा ग़रीबों को वोट देने का भी अधिकार नहीं मिलता।**

धोखे से एनपीआर फ़ॉर्म भरवाने की सरकारी चाल से सावधान रहें!

झूठ-फ़रेब में माहिर मोदी सरकार ने अब एक शातिर चाल चली है। वह एनपीआर को जनगणना के साथ ही करवाने जा रही है ताकि लोगों का एनपीआर फ़ॉर्म पर ध्यान न जाये और वे जनगणना का फ़ॉर्म ही मानकर एनपीआर का फ़ॉर्म भी भर दें। हम सभी बहनों और भाइयों को सावधान करना चाहते हैं - जनगणना का फ़ॉर्म भरें, मगर एनपीआर का नहीं!'

जनगणना के फ़ॉर्म में 13 सवाल होंगे। मगर एनपीआर के फ़ॉर्म में 21 सवाल होंगे जिनमें छह नयी जानकारियाँ माँगी गयी हैं जिन पर सारे देश में सवाल खड़े किये जा रहे हैं। आपके आधार नम्बर, मतदाता कार्ड, पैन नम्बर, ड्राइविंग लायसेंस और मोबाइल नम्बर के अलावा **आपसे यह भी पूछा जायेगा कि आपके माता-पिता किस तारीख़ को और कहाँ पैदा हुए और आप इससे पहले कहाँ रहते थे। एनआरसी का डेटाबेस बनाने के अलावा इन जानकारियों को माँगने की और कोई वजह नहीं है।**

इनके आधार पर सरकार आपकी पूरी वंशावली बनाकर आपकी नागरिकता के बारे में फ़ैसला कर लेगी। सरकारी दफ़्तरों में बैठे हुए क्लर्क और अफ़सर कलम घुमाकर किसी की नागरिकता का फ़ैसला कर देंगे! इतने बड़े पैमाने पर होने वाली कार्रवाई में यह सरकार निश्चित तौर पर बहुत-सा काम ठेके पर करवायेगी। इसमें कितने बड़े पैमाने पर गड़बड़ियाँ, धाँधली, बदले की कार्रवाई आदि होंगे, इसका तो बस अन्दाज़ा ही लगाया जा सकता है। कुल मिलाकर, तस्वीर बहुत डरावनी है।

इसलिए यह ज़रूरी है कि एनपीआर फ़ॉर्म को लोग कत्तई न भरें। यदि आप फ़ॉर्म भरते हैं, तो इसका मतलब होगा कि आप एनपीआर की प्रक्रिया में शामिल हो गये। फ़ॉर्म न भरने पर सरकार 1000 रुपये का जुर्माना कर सकती है। हमारा कहना है - 'हम जुर्माना भी नहीं भरेंगे! हम जेलें भरेंगे! तुम्हारी जेलें कम पड़ जायेंगी लेकिन हमारा आन्दोलन धीमा नहीं पड़ेगा!' 22 जनवरी को सुप्रीम कोर्ट ने सीएए पर केन्द्र सरकार को जवाब देने के लिए 28 दिन दिये हैं। इन 28 दिनों में हमें अपने आन्दोलन को और तेज़ करना होगा। दूसरी तरफ़ सरकार और आरएसएस-भाजपा के लोग आन्दोलन को तोड़ने, बदनाम करने और कुचलने के लिए हर तरह के घटिया हथकण्डे आज़मा रहे हैं। इसलिए सावधान रहें। एनपीआर के फ़ॉर्म धोखे से भरवाने की मोदी सरकार की योजना को नाकाम करें और अपने आन्दोलन को और एकजुट, व्यापक और तूफ़ानी बनायें। यदि वे एनपीआर करने में नाकाम होंगे, तो वे एनआरसी भी नहीं कर पायेंगे।

एनआरसी और एनपीआर सिर्फ़ मुसलमानों के ख़िलाफ़ नहीं हैं, ये सभी ग़रीबों और मेहनतकशों के ख़िलाफ़ हैं!

इस ग़लतफ़हमी को दूर करना ज़रूरी है कि एनआरसी-एनपीआर केवल मुसलमानों को निशाना बनायेगा। यह सच है कि सीएए के साथ मिलकर यह मुसलमानों को ख़ास तौर पर निशाना बनाता है। लेकिन इसकी मार निशाना देश के तमाम ग़रीब मेहनतकश लोगों पर पड़ेगी, चाहे वे किसी भी धर्म, जाति, या समुदाय के हों। इसका सबूत है असम में हुई एनआरसी की कवायद। असम में एनआरसी के अन्तिम राउण्ड में 19 लाख लोग एनआरसी से बाहर हो गये, जिसमें 13.5 लाख से अधिक हिन्दू थे। इन हिन्दुओं को वापस नागरिकता तभी मिल सकती है जबकि वे साबित कर सकें कि वे बंगलादेश, अफ़ग़ानिस्तान और पाकिस्तान के हिन्दू हैं और वहाँ से आये हैं। इस पर असम भाजपा के नेता हेमन्त सरमा ने ख़ुद ही कहा है कि यह इतना आसान नहीं है।

जिस देश में करोड़ों लोगों के पास ख़ुद अपने जन्म और सम्पत्ति के काग़ज़ नहीं हैं, वहाँ अपनी पिछली पीढ़ी के काग़ज़ कितने लोग दिखा पायेंगे? एक मोटे अनुमान के अनुसार अगर अमित शाह की घोषणा के मुताबिक पूरे देश में एनआरसी करायी गयी, तो कम से कम दस करोड़ लोग नागरिकता साबित नहीं कर पायेंगे! कहने की ज़रूरत नहीं कि इनमें सबसे बड़ी तादाद हर धर्म के ग़रीबों की होगी। इन लोगों का क्या होगा? इन्हें देश से निकाला नहीं जा सकता क्योंकि कोई भी देश इन्हें अपने यहाँ लेने का तैयार

(पेज 12 पर जारी)

सीएए+एनपीआर+एनआरसी सभी के लिए क्यों ख़तरनाक हैं

सिर्फ़ मुसलमानों पर ही इसकी मार नहीं पड़ेगी

नागरिकता संशोधन अधिनियम, 2019 (सीएए) अपने आप में एक ग़लत क़ानून है जो धर्म के आधार पर एक क़ौम के लोगों को नागरिकता देने से इंकार करता है। मगर राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर (एनपीआर),जो देशव्यापी एनआरसी (राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर) के लिए पहला क़दम है, के साथ मिलकर यह न केवल मुसलमानों के लिए, बल्कि अन्य सभी भारतीयों के लिए विनाशकारी साबित होगा। आइए देखते हैं, कैसे :

भारत की नागरिकता :

नागरिकता हमें कई अधिकार देती है। मतदान के अधिकार के अलावा, नागरिकों के पास समानता, भाषण की स्वतंत्रता, गैर-भेदभाव, इकट्ठा होने की स्वतंत्रता, धर्म की स्वतंत्रता आदि मौलिक अधिकार हैं, उन्हें भारत में स्थायी रूप से निवास करने का अधिकार है। अधिकांश राज्य कल्याणकारी योजनाएँ केवल नागरिकों के लिए हैं, जैसे, मनरेगा, एससी/एसटी/ओबीसी लोगों के लिए आरक्षण, राशन कार्डआदि। भारत में विदेशी लोगों को केवल जीवन का अधिकार और व्यक्तिगत स्वतंत्रता काअधिकार होता है।

भारतीय नागरिकता जन्म के द्वारा, प्राकृतीकरण द्वारा, पंजीकरण द्वारा और किसी नये क्षेत्र के भारत में शामिल होने के द्वारा हो सकती है। अधिकांश भारत में, जन्म से नागरिकता के लिए, किसी व्यक्ति का यहाँ 1950-1987 के बीच जन्म होना चाहिए; 1987 के बाद, उसका भारत में जन्म होने के अलावा, माता-पिता में से एक को भारतीय नागरिक होना चाहिए; 2004 के बाद, उसके जन्म के अलावा, माता-पिता में से एक भारतीय नागरिक होना चाहिए और दूसरे को अवैध प्रवासी नहीं होना चाहिए।

1985 में हुए असम समझौते के तहत 25 मार्च 1971 से पहले असम में प्रवेश करने वाले विदेशियों को नागरिकता दी जानी थी।

एनपीआर+एनआरसी की प्रक्रिया में समस्याएँ :

असम में एनआरसी से बाहर होने वाले 19 लाख लोगों में से लगभग 70% महिलाएँ हैं। यह तथ्य बताता है कि अपनी नागरिकता साबित करने के लिए लोगों से काग़ज़ दिखाने के लिए कहने का तरीक़ा ही ग़लत है – एनआरसी अवैध आप्रवासियों के नाम पर केवल उन लोगों को पकड़ सकता है जिनके पास आवश्यक काग़ज़ात नहीं हैं। भारत में गाँवों से शहरों में जो भारी आबादी आकर बसती है, उसमें भी ज़्यादातर पुरुष पहले आते हैं और बाद में महिलाओं और बच्चों को शहर में लाने की कोशिश करते हैं। इसलिए यह बात असम्भव लगती है कि पुरुषों की तुलना में बहुत अधिक महिलाएँ अवैध प्रवासी हैं। इसका सीधा मतलब है कि जो महिलाएँ काग़ज़ नहीं दिखा पायीं उन्हें "बाहरी" मान लिया गया। और अब सरकार पूरे भारत में इस विनाशकारी एनआरसीको लागू करने की योजना बना रही है!

एनपीआर प्रस्तावित एनआरसी का पहला चरण है। एनपीआर जनगणना के समान लगता है, लेकिन असल में ऐसा नहीं है। एनपीआर नागरिकता अधिनियम 1955 और नागरिकता नियम, 2003 के अन्तर्गत आता है, जबकि जनगणना जनगणना अधिनियम, 1948 के तहत की जाती है।

एनपीआर की प्रक्रिया जिसके आधार पर एनआरसी किया जायेगा, इस प्रकार है :

- एनपीआर के लिए, सरकारी कर्मचारी घर-घर जाकर भारत में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति का, चाहे वह नागरिक हो या विदेशी, नाम और अन्य ब्यौरे फ़ॉर्म में दर्ज करेंगे।
- फिर वे अपने कार्यालय में बैठकर, एकत्र की हुई सूचनाओं की जाँच-पड़ताल करेंगे और उनमें से कौन "संदिग्ध नागरिक" हैं, यह तय करेंगे।
- तब ऐसे "संदिग्ध नागरिकों" से यह साबित करने के लिए दस्तावेज़ माँगे जायेंगे कि वे असली नागरिक हैं।
- उसके बाद निर्णय लिया जायेगा कि इनमें कौन से "संदिग्ध नागरिक" भारतीय नागरिक होने के योग्य हैं।
- भारतीय नागरिकों का एक राष्ट्रीय रजिस्टर (एन.आर.आई.सी.) तैयार किया जायेगा।
- जिनका नाम इस सूची में होगा उन्हें राष्ट्रीय नागरिकता कार्ड दिया जायेगा।
- यदि आपके पास कार्ड नहीं है, तो आप भारतीय नागरिक नहीं होंगे!

यह बेहद नौकरशाहाना और समय खाने वाली प्रक्रिया है।

सरकारी बाबुओं के हाथ में बहुत अधिक शक्ति होगी, जो भ्रष्ट, साम्प्रदायिक और जातिवादी हो सकते हैं।

कोई भी व्यक्ति आपके एनआरसी में शामिल किये जाने पर आपत्ति उठा सकता है। यह आपत्ति क्षुद्र व्यक्तिगत दुश्मनी, पेशे सम्बन्धी प्रतिद्वन्द्विता, आपकी मातृ-भाषा, जाति, धर्म आदि से भेद के कारण हो सकती है।

जनगणना के आँकड़ों की गोपनीयता जनगणना क़ानून,1948 के प्रावधानों के अन्तर्गत संरक्षित है। एनपीआर के तहत ऐसा कोई प्रावधान मौजूद नहीं है। डेटा का सम्भावित दुरुपयोग एक गम्भीर चिन्ता का विषय है।

एनपीआर + एनआरसी से कौन लोग प्रभावित हो सकते हैं :

महिलाएँ सबसे ज़्यादा असुरक्षित हैं (असम एनआरसी से जो लोग बाहर कर दिये गये है उनमें 2/3 से अधिक महिलाएँ हैं)। महिलाओं के पास अक्सर काग़ज़ात नहीं होते, या उनके काग़ज़ातों में विसंगति के कारण उन्हें समस्याएँ झेलनी पड़ती हैं, क्यों कि इसकी सम्भावना रहती है कि :

– विवाह के बाद उनके नाम बदल जायें (कुछ समुदायों में स्त्रियाँ अपना उपनाम ही नहीं पहला नाम भी बदल देती हैं)

– उन्हें स्कूल न भेजा गया हो

– विरासत में सम्पत्ति न मिली हो

– विवाह के बाद दूसरे गाँव/शहर चली गयी हों

सभी समुदायों के ग़रीब और अशिक्षित लोग जिनके पास दस्तावेज़ नहीं होते।

एससी (लगभग 23 करोड़ भारतीय), एसटी (लगभग 12 करोड़ भारतीय), और ओबीसी (लगभग 55 करोड़ भारतीय), जो अक्सर ग़रीब होते हैं और हो सकता है कि उनके पास आवश्यक दस्तावेज़ न हों।

ख़ानाबदोश और आदिवासी, जो अक्सर सरकारी काग़ज़ातों से बाहर रखे जाते हैं।

21 करोड़ भारतीय मुस्लिमों की भारी बहुतायत, जो ग़रीब है। हो सकता है कि उनमें से बहुतों के पास दस्तावेज़ न हो और उन्हें सीएए + एनआरसी के घातक संयोजन का सामना करना पड़े।

अनाथ और परित्यक्त बच्चे, जिनके पास अपने और अपने माता-पिता के लिए आवश्यक दस्तावेज़ न हों। **यूनिसेफ़ के अनुसार भारत में ऐसे 3.1 करोड़ बच्चे हैं।**

भारत की जनसंख्या के कम से कम 42 प्रतिशत (51.5 करोड़) लोगों के पास जन्म प्रमाणपत्र नहीं है। इसमें वे बुज़ुर्ग आते हैं जो एक ऐसे दौर में पैदा हुए थे जब जन्म पंजीकरण अक्सर नहीं होता था और वे लोग, जिनका जन्म घर पर या ऐसे ग्रामीण क्षेत्रों में हुआ है जहाँ अभी भी जन्म पंजीकरण नहीं होता।

प्रवासी मज़दूर।

अनपढ़ लोग। भारत में आज भी 27 करोड़ से अधिक ऐसे लोग हैं जो पढ़ या लिख नहीं सकते हैं। यह अजीब है कि काग़ज़ का एक टुकड़ा उनकी तक़दीर का फ़ैसला कर सकता है।

बहुत से विकलांग लोग। शारीरिक अशक्तताओं वाले व्यक्तियों के अधिकारों के लिए काम करने वाले संगठनों का कहना है कि विकलांगों में से कई को उनके परिवारों द्वारा छोड़ दिया जाता है। उनके पास दस्तावेज़ नहीं होते या इसकी काफ़ी सम्भावना होती है कि उनके आँखों की पुतली और अँगूठे के निशान के मिलान में गड़बड़ी हो जाये। 2011 की जनगणना के अनुसार 2.1 करोड़ भारतीय विकलांग हैं, जिनमें 1.21 करोड़ निरक्षर हैं। हालाँकि विश्व बैंक के अनुसार भारत में विकलांगों की संख्या कहीं अधिक है, चार से आठ करोड़ के बीच।

वे लोग जिनके नाम अलग-अलग दस्तावेज़ों में अलग-अलग तरीक़े से लिखे हुए हैं। यह एक ऐसी ग़लती है जो भारत में बिल्कुल आम है। (असम में, एक व्यक्ति को, जिसका नाम एक दस्तावेज़ में साखेन अली और दूसरे में साकेन अली दर्ज हो गया था, डिटेंशन कैम्प में 5 साल बिताने पड़े। सुचन्द्रा नाम की एक महिला को भीइ काफ़ी समय कैम्प में बिताना पड़ा क्योंकि उसका नाम अलग-अलग काग़जों में अलग ढंग से लिखा गया था।)

वे लोग जिनके दस्तावेज़ बाढ़, भूकम्प या आग जैसी आपदाओं के दौरान नष्ट हो गये हैं या लम्बे समय के दौरान गुम हो गये हैं। कुछ सरकारी कार्यालयों के रिकॉर्ड बाढ़ और आग में नष्ट हो गये हैं, या चूहे और दीमकों द्वारा खा लिये गये हैं, इसलिए यह सम्भव नहीं है कि सरकार से उनकी नकल प्रतियाँ प्राप्त कर ली जायें।

सीएए को भेदभावपूर्ण क्यों माना जाता है :

सीएए पाकिस्तान, अफ़ग़ानिस्तान और बंगलादेश से आनेवाले उन अवैध प्रवासियों को भारतीय नागरिकता की पात्रता प्रदान करता है, जो हिन्दू, सिख, बौद्ध, जैन, पारसी और ईसाई (यानी ग़ैर-मुस्लिम) हैं और जो भारत में 2015 से पहले आ चुके हैं।

सीएए तिब्बत, श्रीलंका और म्यांमार जैसे अन्य देशों के उत्पीड़ित अल्पसंख्यकों की और साथ ही पाकिस्तान में उत्पीड़न झेलनेवाले हज़ारा, अहमदिया, नास्तिकों और राजनीतिक विरोधियों की अनदेखी करता है।

यह क़ानून पहला ऐसा उदाहरण है जो धर्म को भारतीय नागरिकता की कसौटी के रूप में इस्तेमाल करता है। सीएए भारतीय संविधान के धर्मनिरपेक्ष सिद्धान्तों का उल्लंघन करता है और यह अनुच्छेद 13, 14, 15, 16 और 21 का भी उल्लंघन करता है, जो समानता के अधिकार, क़ानून के समक्ष समानता और भारतीय राज्य द्वारा गैर-भेदभावपूर्ण व्यवहार की गारण्टी देते हैं।

सीएए अवैध प्रवासियों से सम्बन्धित है। अवैध प्रवासियों को प्राकृतीकरण या पंजीकरण के माध्यम से नागरिकता उपलब्ध नहीं है। जिस मुसलमान को "अवैध प्रवासी" घोषित कर दिया गया है वह किसी भी तरह से भारत में नागरिकता नहीं पा सकता।

भारतीय मुसलमान सीएए+ एनआरसी से बुरी तरह प्रभावित हो सकते हैं, क्योंकि देश भर में लागू एनआरसी में अपनी नागरिकता साबित करने के लिए जिन मुसलमानों के पास आवश्यक दस्तावेज़ नहीं होंगे, उन्हें अवैध प्रवासी घोषित किया जा सकता है। नागरिकता प्राप्त करने के लिए वे सीएए का उस तरह उपयोग नहीं कर पायेंगे जैसाकि ग़ैर-मुस्लिम भारतीय झूठ बोलकर और यह दावा करके कर सकते हैं कि वे बंगलादेश, पाकिस्तान या अफ़ग़ानिस्तान से आने वाले अवैध प्रवासी हैं।

सीएए द्वारा नागरिकता ले रहे ग़ैर-मुस्लिमों के लिए समस्याएँ :

एनआरसी सभी धर्मों के लोगों को प्रभावित करेगा। कई ग़ैर-मुस्लिम एनआरसी को लेकर चिन्तित नहीं हैं, क्योंकि उन्हें लगता है कि आवश्यक दस्तावेज़ न होने के कारण यदि उन्हें ग़ैर-नागरिक घोषित कर दिया जाता है तो वे झूठ बोलकर सीएए के माध्यम से नागरिकता प्राप्त कर सकते हैं और यह कह सकते हैं कि वे बंगलादेश, पाकिस्तान और अफ़ग़ानिस्तान से आये अवैध प्रवासी हैं। आरएसएस के लोग हिन्दुओं के बीच ऐसा प्रचार भी कर रहे हैं। मगर वे यह नहीं जानते कि धोखाधड़ी करके सीएए के ज़रिये नागरिकता पाना इतना आसान नहीं होगा। **अगर कोई व्यक्ति झूठ बोलकर सीएए के माध्यम से नागरिकता पाने का इन्तज़ाम कर भी लेता है, तो इसका अर्थ होगा जीवन भर के लिए असुरक्षा।** ये कुछ समस्याएँ हैं जो उसके सामने आ सकती हैं:

एक मराठी मानुष या कोई मलयाली लड़की अथवा कोई तमिल व्यक्ति जिसके पास उपयुक्त दस्तावेज़ नहीं है, और जो बंगाली, उर्दू, पंजाबी या पश्तो नहीं बोल सकता, वह बंगलादेश/पाकिस्तान/अफ़ग़ानिस्तान से होने का दावा कैसे कर सकता है? कुछ सामाजिक कार्यकर्ताओं का कहना है कि सीएए क़ानून के तहत उन ग़ैर-मुसलमानों को नागरिकता नहीं मिल पायेगी जो हिन्दी, मराठी, गुजराती या तमिल भाषी हैं।

यह मत भूलिए कि ये सारे फ़ैसले सरकारी कर्मचारियों के हाथों में होंगे। कुछ दिन पहले हरियाणा के अम्बाला शहर में दो लड़कियों का पासपोर्ट बनाने से कर्मचारियों ने इस

(पेज 9 पर जारी)

लगेगी आग तो आयेंगे घर कई ज़द में, इस गली में सिर्फ़ हमारा मकान थोड़ी है!

(पेज 8 से आगे)

लिए इंकार कर दिया था क्योंकि वे "चेहरे से नेपाली" लग रही थीं!

एससी/एसटी/ओबीसी लोगों के लिए आरक्षण से सम्बन्धित प्रश्न और चिन्ताएँ :

यदि सम्बन्धित व्यक्ति एनआरसी से बाहर है और उसे सीएए के ज़रिये नागरिकता लेनी हो तो एससी/एसटी/ओबीसी के आरक्षण का क्या होगा?

क्या इन 3 देशों के अवैध आप्रवासी होने का दावा करने वाले लोग आरक्षण के पात्र होंगे?

इसका क्या प्रमाण है कि वे उसी जाति के हैं जिसका होने का वे दावा करते हैं?

कुछ बहुजन कार्यकर्ताओं का आरोप है कि सीएए+एनपीआर+एनआरसी खुले तौर पर मुस्लिम विरोधी है, लेकिन इसका छुपा एजेंडा है एससी/एसटी/ओबीसी के ग़रीब लोगों को आरक्षण से वंचित करना और उनकी ताक़त को ख़त्म कर देना।

अगर आप झूठ बोलते हैं और यह कहते हैं कि आप एक अवैध आप्रवासी हैं तो कल्पना करें कि आप कैसी नाज़ुक स्थिति में होंगे और आपको और आपके प्रियजनों को, जिसमें आपकी महिला रिश्तेदार भी शामिल हैं, किस तरह डरकर या दबकर रहना होगा।

यदि आपके पास आवश्यक दस्तावेज़ नहीं हैं तो हो सकता है कि किसी सरकारी बाबू के हाथ में, जो भ्रष्ट हो, यह तय करने का अधिकार हो कि आप सीएए के माध्यम से नागरिकता के योग्य हैं या नहीं।

करोड़ों लोग सफ़ेद झूठ कैसे बोल सकते हैं और कैसे कह सकते हैं कि वे दूसरे देश के हैं? यदि वे झूठे साबित हो जाते हैं (जिसे करना आसान होगा), तो उनके साथ क्या होगा?

यदि आप झूठ बोलते हैं और कहते हैं कि आप एक ग़ैरक़ानूनी आप्रवासी हैं, तो जिस समय से आपने यहाँ आकर बसने का दावा किया है उसके पहले का आपका सारा जीवन आधिकारिक तौर पर अमान्य हो सकता है। यानी आपको एक शरणार्थी के रूप में अपना जीवन फिर से शुरू करना पड़ेगा।

आप भारत आकर रहने का जो समय बताते हैं उससे पहले की आपकी सारी ज़मीन, सम्पत्ति, शैक्षणिक योग्यताओं का क्या होगा?

कोई व्यक्ति भारत आकर रहने का जो समय बताता है उससे पहले हुई शादियों का क्या होगा? क्या इन विवाहों को रद्द कर दिया जायेगा? क्या ऐसे विवाहों से जन्मे बच्चों को नाजायज़ माना जायेगा? इसका दुरुपयोग रोकने के लिए कौन से उपाय किये गये हैं?

पैतृक सम्पत्ति केवल वंशजों को ही दी जा सकती है। यदि आपको एक आप्रवासी होने का दावा करना पड़े तो क्या आप अपनी पैतृक सम्पत्ति से हाथ धो बैठेंगे?

यदि आप कहते हैं कि आप किसी अन्य देश से आये प्रवासी हैं तो बीमा, उत्तराधिकार में मिलने वाली सम्पत्ति, अनुकम्पा के आधार पर नौकरी पाने, यहाँ तक कि अपने माता-पिता द्वारा किराये पर ली गयी जगह पर रहने के उन अधिकारों का क्या होगा, जो आपके परिवार के सदस्यों से जुड़े होने पर ही मिलते हैं?

अगर आपका बच्चा कहता है कि वह किसी अन्य देश से भारत आया या आयी है, तो अपने बुढ़ापे के दिनों में आप उसके द्वारा अपनी देखभाल किये जाने के किसी भी क़ानूनी अधिकार का दावा कैसे कर सकते हैं?

कोई व्यक्ति किसी देश से आकर रहने का जो समय बताता है उससे पहले उसके द्वारा किये गये बलात्कार, हत्या या गबन जैसे अपराधों का क्या होगा? यदि सरकार क़ानूनी रूप से यह स्वीकार करती है कि अपराध होने के समय अभियुक्त इस देश में नहीं था या थी तो उस पर मुक़दमा कैसे चलाया जा सकता है?

अगर बड़े पैमाने पर राज्य की स्वीकृति से इस तरह की बेईमानी होगी, तो देश में क़ानून का कितना सम्मान बना रहेगा?

क्या होगा यदि एनआरसी पूरा होने के बाद में आयी कोई सरकार सीएए को वापस ले लेती है? तब आपकी नागरिकता और आपके जीवन की क्या हैसियत होगी?

क्या होगा अगर राज्य सरकार, भ्रष्टाचार, क्षुद्र दुश्मनी या महज़ कर्तव्यनिष्ठा के कारण पुलिस या अन्य अधिकारी आपके अवैध आप्रवासी के दावे की जाँच करने का निर्णय करते हैं?

क्या आपके स्वाभिमान के लिए यह उचित होगा कि आप झूठ बोलें और यह कहें कि आप किसी दूसरे देश से आये अवैध आप्रवासी हैं? क्या यह आपके लिए उचित होगा कि आप अपने माता-पिता की सन्तान होने से इन्कार कर दें?

देश को इस भयावह टूट-बिखराव और आत्मघाती स्थिति में क्यों डाला जाये?

पूरे देश में लागू होने वाले एनआरसी का वित्तीय ख़र्च :

असम एनआरसी के 10 साल की अवधि में 1200 करोड़ रुपये ख़र्च हुए और 3 करोड़ की आबादी के लिए लगभग 52,000 लोग तैनात किये गये। अगर हम इन आँकड़ों को राष्ट्रीय स्तर तक बढ़ा दें तो 134 करोड़ लोगों के लिए देशव्यापी एनआरसी करवाने में केवल सरकार को 55,000 करोड़ रुपये से अधिक ख़र्च करना पड़ सकता है। (तुलना के लिए जान लीजिए कि भारत सरकार हर साल लगभग 65,000 करोड़ रुपये स्वास्थ्य पर और 95,000 करोड़ रुपये शिक्षा पर ख़र्च करती है।)

भारत की वर्तमान जनसंख्या लगभग 134 करोड़ है। यदि उनमें से 1% (1.34 करोड़) को भी अवैध आप्रवासी घोषित किया जाता है, तो उनके लिए डिटेंशन शिविर बनाने में लगभग 2 लाख करोड़ रुपये का ख़र्च आयेगा। हालाँकि अनुमान लगाया जा रहा है कि कम से कम 10 करोड़ नागरिकता साबित नहीं कर पायेंगे!

इन डिटेंशन शिविरों के रखरखाव में, क़ैद किये गये उन सभी लोगों को शिविरों में रखने और उनके खाने-पीने का प्रबन्ध करने में, जो अपनी रोज़ी-रोटी कमा लेते थे और ख़ुद ही अपना घर-परिवार चला लेते थे, सरकार को हर साल हज़ारों करोड़ रुपये ख़र्च करने पड़ेंगे।

प्रत्येक भारतीय को इसके लिए प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष टैक्सों के रूप में भुगतान करना होगा (देश का हर व्यक्ति टैक्स भरता है, माचिस की डिब्बी से लेकर फ़ोन रिचार्ज कराने तक पर टैक्स लगता है)।

सरकारी अधिकारियों, अदालतों और उन लोगों को जिन्हें अपना और अपने प्रियजनों का बचाव करना है, अपना समय सरकारी दफ़्तरों और अदालतों के चक्कर लगाने और लाइनों में खड़े होने में ख़र्च करना पड़ेगा। अर्थव्यवस्था की हालत और बदहाल हो जायेगी।

सरकारी ख़र्च के अलावा आम लोगों को अपने बचाव में भारी ख़र्च करना होगा। 3.2 करोड़ लोगों की आबादी वाले असम में, अनुमान है कि अब तक लोगों की 11,000 करोड़ रुपये तक की राशि ख़र्च हो चुकी है और उम्मीद है कि अभी यह बहुत अधिक बढ़ेगी क्योंकि एनआरसी से बाहर हो गये 19 लाख लोगों को अपने बचाव के लिए विदेशियों के न्यायाधिकरणों और अदालतों में ख़र्च करना पड़ेगा। **अनुमान है कि राष्ट्रीय स्तर पर बढ़कर यह राशि 5 लाख करोड़ रुपये से भी अधिक हो जायेगी।**

यह नामुमकिन है कि इतने करोड़ों लोग, जिन्होंने कोई अपराध नहीं किया है, दब्बूपन के साथ यह मान लें कि उनकी नागरिकता और उनके अधिकार छीन लिये जायें और सब कुछ हमेशा की तरह चलता रहे।

भारत पर अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक प्रतिबन्ध लगाये जा सकते हैं।

अर्थव्यवस्था पूरी तरह धराशायी हो सकती है।

सीएए+एनपीआर+एनआरसी लागू करने के सम्भावित दुष्प्रभाव

करोड़ों लोगों की ज़िन्दगी नर्क हो जायेगी। पूरे समाज में दुख और कड़वाहट फैलेगी।

सरकार के हाथों में – शीर्ष सत्ता से लेकर मामूली सरकारी बाबुओं और पुलिस के सिपाही तक के हाथों में – अत्यधिक शक्ति केन्द्रित हो जायेगी।

करोड़ों लोग सिर्फ़ इसलिए ग़ैर-नागरिक घोषित हो सकते हैं, क्योंकि उनके पास आवश्यक काग़ज़ नहीं होंगे। उन्हें डिटेंशन शिविरों में बन्द किया जा सकता है या भारत में उन्हें ऐसे ग़ैर-नागरिकों के रूप में रहने की अनुमति दी जा सकती है, जो सभी मौलिक अधिकारों से वंचित होंगे। उन्हें वोट देने का, राशन पाने, मनरेगा का लाभ उठाने आदि का अधिकार नहीं होगा। वे गैस कनेक्शन, फ़ोन कनेक्शन नहीं ले पायेंगे, किसी सरकारी योजना का उनको लाभ नहीं मिलेगा, बैंक में खाता नहीं खुलेगा। वे पूरी तरह सरकारी एजेंसियों के रहमोकरम पर होंगे और उनकी ज़िन्दगी हमेशा डर के साये में गुज़रेगी। ऐसे में वे जीने के लिए कुछ भी करने को मजबूर हो जायेंगे और कौड़ियों के मोल पर उनसे मनमाना काम कराया जा सकेगा। अम्बानी-अडानी, टाटा-बिड़ला जैसे पूँजीपतियों को डिटेंशन सेंटरों में गुलाम मज़दूर मुहैया कराये जायेंगे जिनमें हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों को ही खटना और मरना होगा।

जब भारी ग़रीब आबादी मताधिकार से वंचित हो जायेगी तो सरकारें ग़रीबों के हितों की और भी चिन्ता नहीं करेंगी।

भारत उन देशों में से है जहाँ आर्थिक असमानता की दर दुनिया में सबसे अधिक है। यहाँ सबसे ऊपर के 9 खरबपतियों की सम्पत्ति नीचे की 50% आबादी की कुल सम्पत्ति के बराबर है। एनआरसी प्रक्रिया ग़रीबों को बुरी तरह प्रभावित करेगी, और यह असमानता पहले से भी ज़्यादा बढ़ जायेगी।

अदालतों पर काम का अभी भी बहुत अधिक बोझ है। एनआरसी लागू होने के बाद उनमें मुक़दमों की बाढ़ आ जायेगी क्योंकि जिन करोड़ों लोगों को अर्द्ध-न्यायिक विदेशी ट्रिब्यूनलों द्वारा अवैध प्रवासी माना जायेगा, वे उच्च न्यायालयों में मुक़दमा दायर कर सकेंगे, यहाँ तक कि सुप्रीम कोर्ट में भी अपील कर सकेंगे।

अपराध में वृद्धि होगी और क़ानून का राज और भी कमज़ोर होगा।

जैसाकि हिटलर के समय के जर्मन कवि की इस प्रसिद्ध कविता में कहा गया है, जब आप दूसरे समुदायों पर अत्याचार के प्रति उदासीन रहते हैं, तो जब आप पर अत्याचार होगा, तब आपको भी सहारा नहीं मिल पायेगा।

"पहले वे कम्युनिस्टों के लिए आये
और मैं कुछ नहीं बोला
क्योंकि मैं कम्युनिस्ट नहीं था।
फिर वे यूनियन वालों के लिए आये
और मैं कुछ नहीं बोला
क्योंकि मैं यूनियन में नहीं था।
फिर वे यहूदियों के लिए आये
और मैं कुछ नहीं बोला
क्योंकि मैं यहूदी नहीं था।
फिर वे मेरे लिए आये,
और तब कोई नहीं बचा था
जो मेरे लिए बोलता।"

कई जाने-माने लोगों ने इन क़ानूनों की तुलना 1935 में हिटलर के शासन में जर्मनी में पारित न्यूरेम्बर्ग क़ानूनों से की है, जिनके तहत यहूदियों से उनकी नागरिकता छीन ली थी। उन्होंने आगाह किया है कि सीएए+एनपीआर+एनआरसी उसी तरह के 'होलोकॉस्ट' यानी जनसंहार को जन्म दे सकता है जिसमें यहूदियों को बदनाम और अलग-थलग किया गया, उनकी नागरिकता छीन ली गयी, उन्हें यातना शिविरों में ले जाया गया और अन्त में उन्हें गैस चैम्बरों में मार दिया गया। जर्मनी में नाज़ियों द्वारा 60 लाख यहूदियों की सुनियोजित ढंग से हत्या कर दी गयी थी।

जब नाज़ी यहूदियों के ख़िलाफ़ सामूहिक हत्याकाण्ड रच रहे थे तो आरएसएस के तत्कालीन प्रमुख गोलवलकर इसे "नस्लीय गौरव" का सर्वोच्च रूप बता रहे थे। उन्होंने यहूदियों से "देश को शुद्ध करने" के लिए नाज़ी जर्मनी की प्रशंसा की थी। उन्होंने हिटलर की नस्लवादी नीतियों – न्यूरेम्बर्ग क़ानूनों – के लिए कहा कि "यह हमारे सीखने और लाभ उठाने के लिए एक अच्छा सबक़" है। गोलवलकर ने कहा है कि कोई भी भारतीय जो हिन्दू नहीं है, वह "देशद्रोही" है और भारत में ग़ैर हिन्दू होना "देशद्रोह" है। मोदी गोलवलकर को अपना "पूजनीय गुरू" कहते हैं।

अगर ये विनाशकारी क़ानून लागू हुए तो गृहयुद्ध की सम्भावना हो सकती है। करोड़ों लोग चुपचाप अपने साथ हो

(पेज 10 पर जारी)

अपने लिए जेल ख़ुद बना रहे हैं असम में एनआरसी से बाहर हुए मज़दूर

एनआरसी की सूची में शामिल नहीं होने के बावजूद पेट भरने के लिए मज़दूर उस डिटेंशन सेंटर के निर्माण में जुटे हैं, जहाँ उन्हें क़ैद किया जाना है

– अफ़रोज़ आलम साहिल

असम के ग्वालपाड़ा ज़िले के मटिया इलाक़े के दोमोनी-दलगोमा गाँव में डिटेंशन सेंटर का काम काफ़ी तेज़ी से चल रहा है। यहाँ मौजूद इंजीनियर बताते हैं कि इसे 30 दिसम्बर, 2019 तक तैयार करने को कहा गया था। लेकिन विडम्बना यह है कि इस सेंटर को जो मज़दूर तेज़ी के साथ बना रहे हैं, भविष्य में ज़्यादातर वही इस सेंटर की 'शोभा' बढ़ायेंगे। यहाँ मज़दूरी करने वाले मज़दूरों में यह डर है कि क्या पता इसके बनने के साथ उन्हें भी यहीं क़ैद कर लिया जाये, बावजूद इसके वे अपने पेट की आग बुझाने के लिए दिन-रात काम में लगे हुए हैं।

असम के आदिवासी समुदाय की एक महिला सिपाली हजंग भी यहाँ मज़दूरी कर रही है। वह कहती है, "मेरा नाम एनआरसी में नहीं आया है। मेरे पास सारे काग़ज़ हैं। मैंने विदेशी लोगों के ट्रिब्यूनल में अपील की थी, लेकिन मेरी अपील को ख़ारिज कर दिया गया।" वह आगे कहती है, "मुझे तो यहाँ आने में भी डर लगता है, लेकिन पैसे के लिए मज़दूरी तो करनी ही होगी। अब मुझे यहाँ रखा जायेगा या नहीं, मुझे पता नहीं..." सिपाली की माँ मालती हजंग भी यहीं मज़दूरी कर रही है।

सिपाली की दोस्त सरोजनी हजंग की भी यही कहानी है। वह बताती है, "मेरा नाम भी एनआरसी में नहीं आया है। मैं यह तो जानती हूँ कि ये डी-वोटर के लिए बन रही है, लेकिन मैं यह नहीं जानती कि यहाँ उन्हें रखा जायेगा जिनका नाम एनआरसी में नहीं आया है।"

जब उन्हें बताया गया कि इस डिटेंशन सेंटर में उन्हें रखा जा सकता है, जिनका नाम एनआरसी में नहीं आया है. तो इस पर वह कहती है, "अब मैं यह जान गयी हूँ कि ये डिटेंशन सेंटर है, तो बहुत डर लग रहा है पर मेरे पास पैसा नहीं है, इसलिए यहाँ मज़दूरी कर रही हूँ। मेरे दो छोटे बच्चे हैं, पति को दिमाग़ी बीमारी है।"

(फ़ोटो: असम के ग्वालपाड़ा ज़िले के मटिया इलाके के दोमोनी-दलगोमा गाँव में बन रहा डिटेंशन सेंटर)

हम यहाँ कई मज़दूरों से बात करने की कोशिश करते हैं, लेकिन अधिकतर बात करने से बच रहे हैं। एक नौजवान मज़दूर बताता है कि यहाँ काम करने वाले ज़्यादातर लोगों का नाम एनआरसी में नहीं है, लेकिन वह बतायेगा नहीं, क्योंकि उसे लगता है कि यह पता चलने के बाद उसे काम से निकाल दिया जायेगा।

क़रीब ही ममता हजंग ने चाय की दुकान खोल रखी है। यहाँ के अधिकतर मज़दूर यहीं आकर चाय पीते हैं। वह बताती है कि यहाँ के गाँव में अधिकतर लोगों का नाम एनआरसी में नहीं आया है। उसके बेटे का नाम भी एनआरसी लिस्ट से ग़ायब है।

बता दें कि हजंग असम में एक जनजाति है। ये लोग 1966 में भारत सरकार के निमंत्रण पर पूर्वी पाकिस्तान से भारत आये थे। इस जनजाति का रिफ़्यूजी कैंप भी इसी इलाक़े में बसाया गया था। लेकिन विडम्बना यह है कि इस गाँव के अधिकतर लोगों का नाम एनआरसी लिस्ट में नहीं आया है और यही लोग इस डिटेंशन सेंटर में मज़दूरी कर रहे हैं।

यहाँ निरीक्षण का काम देख रहे जूनियर इंजीनियर रबिन दास 'डाउन टू अर्थ' के साथ बातचीत में बताते हैं – जो डिटेनी होगा, जो डी-वोटर होगा, जिसका नाम एनआरसी में नहीं आया, उसे यहाँ रखना है। यहाँ 3,000 लोग रखे जा सकते हैं। यहाँ हर तरह की सुविधा उपलब्ध होगी। खाना, रहना, स्कूल, अस्पताल सब कुछ होगा।

वे यह बताते हैं कि ये विश्व का दूसरे नम्बर का डिटेंशन सेंटर होगा। पहला स्थान अमेरिका का है, दूसरा स्थान हमारे असम का होगा। ऐसे डिटेंशन सेंटर और बनेंगे।

इस डिटेंशन सेंटर के बारे में असम का हर अधिकारी मीडिया से बात करने में कतरा रहा है। ग्वालपाड़ा की डिप्टी कमिश्नर वरनाली डेका ने 'डाउन टू अर्थ' से बातचीत में बताया कि इसका काम जेल आईजी की देखरेख में हो रहा है। उन्हें उसकी कोई जानकारी नहीं है. लेकिन ग्वालपाड़ा जेल का कोई अधिकारी इस सिलसिले में कोई बात करने को तैयार नहीं है।

असम में ऐसे 9 सेंटर और बनाये जाने हैं। ये सेंटर असम के बरपेटा, दीमा हसाव, कामरूप, करीमगंज, लखीमपुर, नगांव, नलबरी, शिवसागर और सोनितपुर में बनाये जाने की योजना है। फ़िलहाल 6 सेंटर यहाँ के डिस्ट्रिक्ट जेलों में चल रहे हैं और जेलों में बने इन सेंटरों में क़रीब एक हज़ार से अधिक लोगों को बद से बदतर हालात में रखा गया है। बताया जा रहा है कि फ़िलहाल कोकराझार, ग्वालपाड़ा, जोरहाट, तेजपुर, डिब्रूगढ़ और सिलचर की जेलों में चल रहे डिटेंशन कैंपों में क़ैद विदेशियों को इस सेंटर में रखा जायेगा।

एक जानकारी के मुताबिक़ ग्वालपाड़ा के इस डिटेशन सेंटर के लिए 46.5 करोड़ की मंज़ूरी दी गयी है। वहीं दस सेंटरों पर प्रस्तावित ख़र्च 1,000 करोड़ रुपये है। यह सारा ख़र्च केन्द्र सरकार वहन करेगी।

बता दें कि असम में 31 अगस्त को एनआरसी की आख़िरी लिस्ट जारी हुई। इसमें 19 लाख लोग ऐसे पाये गये, जिनके नाम इस लिस्ट में नहीं हैं। इन 19 लाख लोगों को अपनी नागरिकता साबित करने का एक और मौक़ा दिया जायेगा। ऐसे लोग 120 दिन की समय सीमा के अन्दर अपनी नागरिकता साबित कर सकेंगे। नागरिकता साबित करने के लिए इन लोगों को विदेशियों के ट्रिब्यूनल का दरवाज़ा खटखटाना पड़ेगा। इस वक़्त असम में 84 ऐसे ट्रिब्यूनल हैं, जबकि ऐसे 200 ट्रिब्यूनल और शुरू करने की तैयारी चल रही है।

महाराष्ट्र में भी बंगलादेशियों के लिए डिटेंशन सेंटर बनायेगी सरकार

असम के बाद अब महाराष्ट्र से भी डिटेंशन सेंटर बनाये जाने की ख़बर आ रही है। महाराष्ट्र सरकार ने राज्य में रह रहे अवैध बंगलादेशियों के लिए नवी मुंबई में डिटेंशन सेंटर बनाने के लिए जगह ढूँढ़ना शुरू कर दिया है। इसके लिए गृह मंत्रालय ने सिडको को पत्र लिखा है। पिछले हफ़्ते लिखे गये इस पत्र में जगह ढूँढ़ने की माँग की गयी है। राज्य सरकार नेरुल में दो से तीन एकड़ जमीन ढूँढ़ रही है।

('डाउन टु अर्थ' पत्रिका से साभार)

सीएए+एनपीआर+एनआरसी सभी के लिए क्यों ख़तरनाक हैं

(पेज 9 से आगे)

रहे अन्याय को बर्दाश्त नहीं करेंगे।

पूरी दुनिया में भारत अलग-थलग पड़ जायेगा।

पूरी दुनिया में अनिवासी भारतीयों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।

पड़ोसी देशों में रहने वाले हिन्दुओं पर नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।

समाज में शत्रुता, दुख और दुर्भावना फैलेगी।

सीएए+एनपीआर+एनआरसी को रोकने के लिए आप क्या कर सकते हैं :

अपने परिवार, दोस्तों, सहकर्मियों और पड़ोसियों के बीच इस मुद्दे के बारे में जागरूकता बढ़ाएँ। उन्हें समझाएँ कि सीएए + एनपीआर + एनआरसी हमारे लिए विनाशकारी साबित होगा और इसे रोका जाना चाहिए।

सरकार, आरएसएस-भाजपा और बिके हुए मीडिया द्वारा किये गये झूठे और ज़हरीले प्रचार से सावधान रहें। इसके बहकावे में न आयें। आपके पास आने वाले संघ-भाजपा के लोगों से सवाल करें।

इसका विरोध करें। पूरे भारत में लाखों-लाख लोग लोकतांत्रिक तरीक़ों से इस क़ानून का विरोध कर रहे हैं। उनका साथ दीजिए।

ज़्यादातर पूँजीवादी मीडिया अपने मालिकों की भाषा बोलते हुए इस मसले पर भी झूठ फैलाने में लगा है। भाजपा का आईटी सेल भी दिनो-रात व्हॉट्सऐप, फ़ेसबुक और वेबसाइटों से ज़हरीला प्रचार कर रहा है। आँख मूँदकर इनकी बातों को मत मान लीजिये। यह मीडिया कभी ग़रीबों और मेहनतकशों की आवाज़ नहीं उठाता है। आज भी उसे हमारी नहीं बल्कि अपने धन्नासेठ मालिकों के हितों की चिन्ता है।

ट्विटर, फ़ेसबुक, व्हॉट्सऐप, इंस्टाग्राम, टेलीग्राम, यूट्यूब जैसे सोशल मीडिया प्लेटफ़ार्मों के ज़रिए जनता के पक्ष में भी काफ़ी लोग आवाज़ उठा रहे हैं। इसके अलावा, 'मज़दूर बिगुल' जैसे अख़बार और पत्रिकाएँ सच्चाई को लोगों तक पहुँचाने में लगी हैं। इनकी पहचान कीजिए और इनसे जुड़िए।

सबसे ज़रूरी बात है कि सीएए + एनपीआर + एनआरसी की प्रक्रिया का पूरा बहिष्कार किया जाये। सरकार एनपीआर की प्रक्रिया शुरू करने जा रही है। देश भर में जारी आन्दोलन की ओर से इसके साथ असहयोग करने का आह्वान किया जा रहा है। यह बहुत ज़रूरी है। अगर करोड़ों लोग सिविल नाफ़रमानी की राह पर चलते हुए सरकार को अपने ब्यौरे देने से इंकार कर देंगे एनपीआर की प्रक्रिया उन्हें रद्द करनी पड़ेगी।

जो लोग पत्रकार, वकील, सामाजिक कार्यकर्ता, फ़िल्मकार, कलाकार, लेखक आदि हैं, उन्हें अपने हुनर के साथ इस आन्दोलन से जुड़ना होगा।

इस वक़्त, सीएए + एनपीआर + एनआरसी के खिलाफ़ लड़ाई बेहद ज़रूरी और महत्वपूर्ण है। लेकिन इसके साथ ही हमें पूरी फ़ासीवादी सत्ता और राजनीति के विरुद्ध एक लम्बी लड़ाई में भी जुटना होगा। फ़ासीवाद को जड़ से मिटाने के लिए ज़रूरी है कि इसे पैदा करने वाली पूँजीवादी व्यवस्था को मिटाने के संघर्ष के साथ इस लड़ाई को जोड़ा जाये।

(इस लेख को तैयार करने के लिए 'सिटिज़न्स फ़ॉर जस्टिस एंड पीस' द्वारा प्रस्तुत सामग्री का उपयोग किया गया है।)

अंग्रेज़ी से रूपान्तर: मीनाक्षी

असम में डिटेंशन कैम्प के भीतर क्या-क्या होता है

– नितिन श्रीवास्तव
(बीबीसी संवाददाता)

कल्पना कीजिए कि एक 35 फ़ुट x 25 फ़ुट के कमरे में क़रीब 35 आदमी सो रहे हों। सुबह पाँच बजे लगभग सभी को एक दहाड़ती हुई आवाज़ के साथ जगा दिया जाये। छह बजे तक इन सभी को कमरे में मौजूद एकमात्र टॉयलेट से फ़ारिग होकर चाय और बिस्कुट ले लेने होंगे। साढ़े छह बजे इन सभी लोगों को बाहर एक बड़े से आँगन में छोड़ दिया जायेगा, पूरा दिन काटने के लिए। अगर सुबह की चाय-बिस्कुट नहीं ले पाये तो फिर कुछ घण्टे बाद ही चावल मिलेगा, जिसके साथ दाल कितनी पकी मिलेगी ये सिर्फ़ क़यास की बात है। चार बजे तक रात का खाना भी ले लेना अनिवार्य सा है, सब्ज़ी-दाल और चावल। हफ़्ते में दो दिन उबले अण्डे मिलेंगे और एक दिन मीट परोसने की बात है।

रोज़ शाम साढ़े छह बजे इनकी दुनिया वापस उसी कमरे में सिमटा दी जायेगी। रात भर खाने का कोई दूसरा ज़रिया नहीं और 'सही जुगाड़ वालों को' टॉयलेट के दरवाज़े से थोड़ी दूर सोने को मिल सकता है।

लेकिन इस दुनिया को सिर्फ़ भीतर रहने वाले ही देख पाते हैं और बयान कर पाते हैं।

बाहर का नज़ारा

दोपहर के साढ़े ग्यारह बजे हैं और लोहे के एक बड़े गेट के बाहर क़रीब एक दर्जन लोग लाइन लगा चुके हैं। सभी को इन्तज़ार है गेट के उस पार की दुनिया से किसी अपने की शक्ल देखने का, उसकी सुध लेने का। सिर्फ़ पाँच से 10 मिनट मिलेंगे यह करने को और अगर आपके पास 100 रुपये ज़्यादा हैं तो 10 मिनट बढ़ भी सकते हैं।

बाहर गेट पर आपने मोबाइल भी निकाल लिया तो दो गार्ड पूछने दौड़ते हैं, "फोटू मत लेना, नहीं तो सज़ा हो सकती है।" लाइन में खड़े लोगों में एक मोहम्मद युनुस भी हैं जो अपने पिता का हाल लेने आये हैं।

"मेरे बाप ने कोई क़त्ल या चोरी नहीं की है। उन्हें कोई सज़ा भी नहीं सुनायी गयी है। लेकिन पिछले कई महीनों से वे जेल के एक हिस्से में क़ैद हैं क्योंकि उन्हें विदेशी (बांग्लादेशी) बताया जा रहा है। अब आप मेरा फोटो मत लेना सर, नहीं तो मुझे भी विदेशी मान लिया जायेगा", कहते हुए युनुस की आँखें नम हो चुकी हैं।

सिलचर सेन्ट्रल जेल के भीतर ही एक डिटेंशन कैम्प है जिसमें 50 से ज़्यादा ऐसे लोग क़ैद हैं जिनकी भारतीय नागरिकता पर शक है।असम में पिछले 10 वर्षों से 6 डिटेंशेन कैम्प हैं और सरकार के मुताबिक़ क़रीब 1,000 लोग फ़िलहाल राज्य के डिटेंशेन कैम्पों में क़ैद हैंये कैम्प राज्य के सिलचर, ग्वालपाड़ा, कोकराझार, तेज़पुर, जोरहट और डिब्रूगढ़ ज़िलों में हैं।

ख़ास बात यह है कि ऐसे मामलों की सुनवाई विशेष रूप से बनी विदेशी ट्रिब्यूनल में ही शुरू हो सकती है।साल 2008 से अब तक क़रीब 90,000 लोगों की नागरिकता शक के घेरे में आ चुकी है।इनमें वो भी शामिल हैं जिनका नाम डी-वोटर यानी संदिग्ध वोटर श्रेणी में है।

किस बात की सज़ा?

ऐसे ही एक शख़्स अजित दास भी हैं जिनके ख़िलाफ़ विदेशी ट्रिब्यूनल से तीन महीने पहले वारंट जारी हुआ था।अजित एक पेशी में नहीं पहुँचे जिसके चलते उन्हें सिलचर जेल के भीतर बने डिटेंशन कैम्प में पहुँचा दिया गया।ढाई महीने बाद बेल पर रिहा होने वाले अजित ने अपना तजुर्बा बताया।

उन्होंने कहा, "डेढ़ महीने तक मर्डर, रेप और चीटिंग केस वाले क़ैदियों के साथ रखा गया। शिक़ायत करने पर उसी जेल के डिटेंशेन कैम्प में शिफ़्ट कर दिया। कैम्प में बीमार लोगों सा खाना मिलता था। जाते समय मेरा वज़न 60 किलो था। ढाई महीने रहने पर 5 किलो कम हो गया। बाहर आने पर चलने-फिरने में दिक़्क़त हो रही है। एक रूम में 50 लोगों को रखा जाता है, बाथरूम के सामने सोना पड़ता है"।

दशक भर पहले बने इन डिटेंशन कैम्पों की व्यवस्था पर सवाल पहले भी उठे हैं।चंद महीने पहले ही पूर्व प्रशासनिक अधिकारी और सामाजिक कार्यकर्ता हर्ष मंदर ने भी राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की उस कमिटी से इस्तीफ़ा दिया था जिसने असम जाकर इन डिटेंशन कैम्पों का जायज़ा लिया था।हर्ष मंदर का दावा है कि, "कमिटी के दो और नुमाइंदों के साथ मैंन जमा होने वाली रिपोर्ट के अलावा एक स्वतंत्र रिपोर्ट भी आयोग को सौंपी थी लेकिन उस पर कोई एक्शन नहीं लिया गया"।

विदेशी ट्रिब्यूनल

हालाँकि असम सरकार ने इस बात को कई बार दोहराया है कि, "डिटेंशन कैम्पों की तुलना जेलों से करना ग़लत है।"दक्षिणी असम के विशालकाय कछार प्रान्त के ज़िला उपायुक्त एस लक्ष्मनन ने सभी आरोपों पर बीबीसी से बात की।

उन्होंने कहा, "कुछ संदिग्ध वोटरों को सज़ा काट रहे क़ैदियों के साथ एक ही जेल में रहना पड़ रहा है क्योंकि जगह की कमी है। वैसे भी जेल एक रिफ़ार्म सेंटर होता है। जिनको किसी भी क़िस्म की तकलीफ़ या मेडिकल सहायता की ज़रूरत होती है, उन्हें हम सब कुछ निःशुल्क मुहैया कराते हैं। सरकारी स्टाफ़ की कमी को भी पूरा किया जा रहा है।"

इस बीच डिटेंशन कैम्पों में रह कर आये लोगों के दावे दिल दहलाने वाले हैं।क़रीब सात साल पहले सिलचर की रहने वाली सुचंद्रा गोस्वामी के घर विदेशी ट्रिब्यूनल का एक नोटिस पहुँचा था। विदेशी होने के शक का नोटिस जिस व्यक्ति के नाम पर था उससे सुचंद्रा का नाम ज़रा सा ही मिलता था तो परिवार ने नोटिस पर ध्यान नहीं दिया।लेकिन मई, 2015 की एक शाम स्थानीय पुलिस वाले सुचंद्रा को उनके घर से पूछताछ के लिए थाने ले गये और फिर वहाँ से डिटेंशन कैम्प।

सुचंद्रा गोस्वामी उस दिन को याद करके आज भी भावुक हो उठती हैं।उन्होंने कहा," ग़लत नाम के चलते तीन दिन सेंट्रल जेल में रहना पड़ा। ऐसा तजुर्बा तो बुरा ही होगा। मुझ जैसी हाउसवाइफ़ को जेल में डाल दिया। डिटेंशेन कैम्प नाम की कोई चीज़ नहीं थी, मुझे दूसरे क़ैदियों के साथ डाल दिया। जेल में साफ़-सफ़ाई नहीं है ।बाथरूम इतने गन्दे कि पूछिए मत। समझ लीजिए खाना सिर्फ़ ज़िन्दा रहने के लिए मिलता है। कोई क़ैदी है तो क्या हुआ, उसका पानी-खाना तो ठीक होना चाहिए"।

डिटेंशन कैम्प के बाहर

सुचंद्रा के लिए ग़लतफ़हमी के वे तीन दिन तीस साल के बराबर हैं।डिटेंशन कैम्प में रह कर आये अधिकतर लोग बताते हैं कि वहाँ ज़्यादातर बुज़ुर्ग ही हैं।उनमें से कुछ ऐसे हैं जिनके विदेशी होने का प्रमाण भी मिल चुका है। लेकिन अमराघाट के रहने वाले और अपनी उम्र 100 से ऊपर बताने वाले चन्द्रधर दास जैसे भी हैं जिन्हें फ़िलहाल छोड़ दिया गया है अगली पेशी की तारीख़ तक।

हाइवे से सटे एक छोटे से दो कमरे वाली टीन की छत के नीचे चन्द्रधर दास ने अपनी दास्तान सुनायी। "जेल में दूसरे क़ैदियों को मेरी उम्र और वहाँ होने पर ताज्जुब था। क़ैदी ही मेरी मदद करते थे क्योंकि मैं बिना सहारे के चल नहीं सकता, उठ-बैठ नहीं सकता। मैंने ऐसा क्या गुनाह किया था कि इस उम्र में मुझे तीन महीने के लिए जेल में डाल दिया गया।अगर जेल जाना पड़ा तो दोबारा जाऊँगा लेकिन यह साबित करके रहूँगा कि मैं भारतीय ही हूँ।"

असम के डिटेंशन कैम्प इन दिनों ज़्यादा चर्चा में इसलिए हैं क्योंकि हाल ही में एनआरसी यानी राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर की अन्तिम लिस्ट जारी की गयी है। इस लिस्ट में उन लोगों का नाम है जिन्हें भारतीय नागरिक घोषित कर दिया गया है। हालाँकि करीब 40 लाख लोग ऐसे भी हैं जिनका नाम इस लिस्ट में नहीं आया है।

लोगों में इस बात को लेकर डर था कि आगे उनका क्या होगा, क्या उन्हें विदेश भेज दिया जायेगा या फिर कहीं विदेशी ट्रिब्यूनल में उनके ख़िलाफ़ मामला तो नहीं शुरू हो जायेगा।

हलाँकि सरकार ने इस बात को साफ़ किया है कि एनआरसी का डिटेंशन कैम्पों में रहने वालों से कोई लेना-देना नहीं है और जिनका नाम लिस्ट में नहीं आया है उन्हें और मौके दिये जायेंगे नागरिकता साबित करने के।

एनआरसी की वजह से मुश्किल में कई परिवार

लेकिन डिटेंशन कैम्पों के भीतर के हालात पर असम सरकार ने अभी तक ज़्यादा खुल कर बात नहीं की है।राज्य गृह मंत्रालय के एक वरिष्ठ अफ़सर ने बीबीसी से कहा, "हम लोग इस बात पर काम कर रहे हैं कि डिटेंशन कैम्पों को जेलों से अलग शिफ़्ट किया जाये। साथ ही हम लोग डिटेंशन कैम्पों के हालात सुधारने का पूरा प्रयास कर रहे हैं।"ये प्रयास'' कब तक सच होने की शक्ल लेंगे यह कह पाना फ़िलहाल मुश्किल है।

लेकिन जिन लोगों को यहाँ रहना पड़ रहा है या जो लोग यहाँ रह चुके हैं, उनके लिए ये डिटेंशन कैम्प एक भयानक सपना है जिसे भुलाने में वे दिन-रात लगे रहते हैं।

ये झूठ है! झूठ है! झूठ है!

22 दिसंबर को नरेंद्र मोदी ने दिल्ली के रामलीला मैदान में रैली के दौरान कहा था: डिटेंशन सेंटर की अफ़वाहें हैं; यह झूठ है, झूठ है, झूठ है।

24 दिसम्बर को अमित शाह ने कहा: डिटेंशन सेंटर सतत प्रक्रिया है, अगर कोई विदेशी नागरिक पकड़ा जाता है तो उसे डिटेंशन सेंटर में रखते हैं। शाह ने कहा: 6 साल में एनआरसी पर कोई बात नहीं हुई। लेकिन संसद में और कई चुनावी रैलियों में अमित शाह ने कहा था: ये मानकर चलिए, एनआरसी आने वाला है। आप क्रोनोलॉजी समझिए। पहले सीएए आयेगा और फिर पूरे देश में एनआरसी लागू होगा।

इससे पहले 27 नवंबर को राज्यसभा में गृहराज्य मंत्री नित्यानंद राय ने असम के डिटेंशन सेंटरों में 28 लोगों की मौत होने की बात सही बताया था। उसके बाद कम से कम दो और लोगों की मृत्यु की ख़बर आ चुकी है।

अन्तरराष्ट्रीय न्यूज एजेंसी रॉयटर्स की रिपोर्ट के मुताबिक, असम में 6 डिटेंशन सेंटर हैं। इंडियन एक्सप्रेस के मुताबिक, कर्नाटक में भी एक डिटेंशन सेंटर हाल ही में बनकर तैयार हुआ है। कई और राज्यों में डिटेंशन सेंटर बन रहे हैं। रॉयटर्स की सितंबर में आयी रिपोर्ट के मुताबिक, असम के गोलपाड़ा में अवैध प्रवासियों के लिए पहला डिटेंशन सेंटर बनाया जा रहा है। इसमें करीब 3 हजार लोगों को रखा जा सकता है। अगस्त 2016 में सरकार ने भी लोकसभा में बताया था कि असम में 6 डिटेंशन सेंटर हैं।

गृह मंत्रालय ने जनवरी 2019 में राज्यों को डिटेंशन सेंटरों के बारे में नियमावली भी भेजी थी।

सरकार की धोखेबाज़ी से सावधान! एनपीआर ही एनआरसी है!

(पेज 7 से आगे)

नहीं होगा। फिर? देशभर में अरबों रुपये ख़र्च करके जो बड़े-बड़े डिटेंशन सेंटर बनाये जा रहे हैं उनमें भारी संख्या में लोगों को रखा जायेगा। एक-एक कमरे में दर्जनों लोग। आधा पेट खाकर बैल की तरह काम करते-करते वे मर जायेंगे। इसके बाहर जो आबादी रह जायेगी वह भी डर और ग़ुलामी में ही जियेगी।

यह आम अवाम की लड़ाई है

मोदी सरकार अपने छह साल के शासन में जनता से किये सारे वादे तोड़ चुकी है। अर्थव्यवस्था तबाही के कगार पर है। बेरोज़गारी पिछले 45 साल का रिकॉर्ड तोड़ चुकी है। महँगाई ने आम लोगों का जीना दूभर कर दिया है। सरकार एक-एक करके सारे सार्वजनिक उद्योग अपने चहेते पूँजीपतियों को बेच रही है। लाखों करोड़ रुपये अम्बानी-अडानी जैसे सेठों पर लुटाये जा रहे हैं, मोदी के प्रचार पर हज़ारों करोड़ बहाये जा रहे हैं और ऊपर से नीचे तक भ्रष्टाचार का राज क़ायम है। इससे होने वाले घाटे को पूरा करने के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, मनरेगा आदि के बजट में कटौती करके सारा पैसा सरकार हड़प ले रही है।

हर मोर्चे पर नाकाम यह सरकार केवल एक मकसद में कामयाब हुई है! वह है धर्म और जाति के नाम पर नफ़रत फैलाना और लोगों को आपस में बाँट देना। देश में अगर कोई 'टुकड़े-टुकड़े गैंग' है, तो वह यही लोग हैं। लेकिन जनता के आन्दोलन ने अब उनके इस मंसूबे पर भी करारी चोट की है। हर जगह भारी संख्या में मुसलमानों के साथ-साथ हर जाति और मजहब के लोग सड़कों पर उतर रहे हैं और धुआँधार झूठे प्रचार के बावजूद 'नहीं बँटेंगे, एक रहेंगे' का नारा बुलन्द कर रहे हैं। इस एकजुटता को हमें और भी व्यापक बनाना है, क्योंकि यही हमारी सबसे बड़ी ताक़त है।

हम हिटलरी जर्मनी का काला इतिहास यहाँ दोहराने नहीं देंगे!

हिटलर के ज़माने में जर्मनी में बनाये गये डिटेंशन सेंटरों का इतिहास बताता है कि इनका इस्तेमाल देश के पूँजीपतियों को मुफ़्त ग़ुलाम श्रम मुहैया कराने के लिए किया गया था। हमारे देश में अम्बानी-अडानी, टाटा-बिड़ला जैसे सरमायेदारों को डिटेंशन सेंटरों में मुफ़्त ग़ुलाम मज़दूर मुहैया कराये जायेंगे जिनमें हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों को ही खटना और मरना होगा। इसके अलावा बाहर भी अधिकारों से वंचित करोड़ों की आबादी का वे मनमाने तरीक़े से शोषण कर सकेंगे। यह सब इसीलिए किया जा रहा है ताकि मन्दी से बिलबिला रहे पूँजीपतियों-सरमायेदारों को राहत दिलायी जा सके। यही इनके असली नापाक मंसूबे हैं। मन्दी, बेरोज़गारी और महँगाई से ध्यान भटकाने के लिए और पूँजीपतियों को मुनाफ़े के संकट से राहत दिलाने के लिए मोदी-शाह की तानाशाह सरकार ने सीएए-एनपीआर-एनआरसी की चाल चली है। **यही इनके तथाकथित "हिन्दू राष्ट्र" की असलियत है।**

लेकिन **यह हमारे वजूद का सवाल है और हम किसी भी कीमत पर उनके इन नापाक मंसूबों को कामयाब नहीं होने देंगे। ये सभी ग़रीबों और मेहनतकशों को निशाना बनाने वाली फासीवादी चालें हैं और इसीलिए हमारे आन्दोलन का रंग किसी भी कीमत पर किसी मजहब या सम्प्रदाय से नहीं जुड़ना चाहिए। हमें हर धर्म और हर जाति के तमाम मेहनतकशों की एकजुटता के बूते इस फासीवादी मंसूबे को नाकाम करना होगा और इसी रास्ते से यह सम्भव भी है। संघी प्रचार मशीनरी और गोदी मीडिया से दिनो-रात जारी ज़हरीले और झूठे प्रचार से यह राय बनाने की कोशिश हो रही है कि यह आन्दोलन केवल मुसलमानों का है, ताकि इस आन्दोलन के विरोध में धार्मिक आधार पर ध्रुवीकरण किया जा सके। हमें संघ परिवार की इस साज़िश को बेनक़ाब और नाकाम करना होगा और सभी धर्मों और सम्प्रदायों के आम अवाम की फ़ौलादी एकजुटता क़ायम कर मोदी-शाह की जोड़ी के फासीवादी मंसूबों को नाकाम करना होगा।**

(बिगुल मज़दूर दस्ता, नौजवान भारत सभा, दिशा छात्र संगठन, और स्त्री मुक्ति लीग की ओर से विभिन्न शहरों में बाँटा जा रहा पर्चा)

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की देशभक्ति का सच

(पेज 6 से आगे)

खुद को सबसे बड़ा 'राष्ट्रवादी' बता रहा है। देश की आम जनता इतनी मूढ़ नहीं है। देश के नौजवान इस संघ द्वारा बोले जाने वाले इस झूठ पर कभी भी यकीन नहीं करेंगे।

... ...

आरएसएस के "देशप्रेम" का सच

जिस बात को एक आम भारतीय समझता है उससे संघ इनकार करता है। आज एक आम आदमी से आप पूछिए कि इस देश में हिन्दू- मुस्लिम, मंदिर-मस्जिद, के नाम पर बाँटना क्या ठीक है? तो उसका उत्तर होगा कि लोगों का आपसी भाईचारे से रहना ही इन झगड़ों का विकल्प है, कुछ लोग अपना उल्लू सीधा करने के लिए ये दंगे भड़काते हैं, जनता को बाँटते है। जब आजादी के समय से लेकर आज तक 'हिन्दू मुस्लिम सिक्ख इसाई सब आपस में भाई-भाई' की बात सबको जँचती है। **जब क्रान्तिकारी शहीदों ने आजादी के समय लोगों को साम्प्रदायिकता के खतरे से आगाह करते हुए लोगों को मिलकर आजादी की लड़ाई के लिए संघर्ष करने की अपील की तो उस समय संघ अपनी कट्टर हिन्दू साम्प्रदायिक नीति का प्रचार कर रहा था, और आज भी कर रहा है। संघ के लिए देश का मतलब कट्टर हिन्दू साम्प्रदायिक लोगों का देश है और इसके दायरे में अन्य धर्मों को मानने वाले तो दूर स्वयं व्यापक आम हिन्दू आबादी भी नहीं है।** आदिवासी और दलित आबादी, महिलाएँ भी संघ के कट्टर हिन्दू राष्ट्र की नीति में कहीं नहीं हैं। क्योंकि संघ के लिए जो 'मनुस्मृति' सबसे बेहतर संविधान है उसमें दलितों और महिलाओं की स्थिति गुलाम की स्थिति से अधिक कुछ नहीं है।

भारत में राष्ट्र की अवधारणा औपनिवेशिक गुलामी से आजादी के लिए उसके संघर्ष करने के दौरान विकसित हुई है। सामान्य आदमी भी जानता है कि पहले भारत में राजे रजवाड़े और अलग- अलग रियासतें थीं- प्राचीन भारत में भी जैन, बौद्ध और हिन्दू धर्म को मानने वाले लोग थे। हिन्दू धर्म में भी अनेकों सम्प्रदाय थे और हैं जो अलग अलग मूल्यों को मानते थे और आज भी मानते हैं। कोई एकाश्मी मानकीकृत संस्कृति के बजाय विभिन्न संस्कृतियाँ प्राचीन काल से अब तक बनी और चली आ रही हैं। लेकिन संघ अपनी झूठी और गढ़ी हुई राष्ट्र की परिभाषा में नंगी आँखों से दिखने वाली समाज की भौतिक सच्चाई को नकारते हुए एक 'हिन्दू राष्ट्र' की बात करता है जो ऐतिहासिक सच्चाइयों से न सिर्फ दूर है बल्कि पूरे मुल्क को बाँटने, टुकड़े-टुकड़े करने और दंगों की आग में झोंककर आज पूँजीपतियों की सेवा पर आमादा है।

आरएसएस का कौन सा राष्ट्र?

भारत के बारे में गोलवलकर शहीदों के विचारों के विपरीत जाते हुए एक अलग ही राग अलापते हैं। वही साम्प्रदायिक सोच, अलगाव पैदा करने की सोच उनकी राष्ट्र की परिभाषा में भी दिखाई देती है। वे कहते हैं:

"इस प्रकार अपनी वर्तमान स्थितियों में राष्ट्र की आधुनिक समझ लागू करते हुए जो अप्रश्नेय निष्कर्ष हमारे सामने आता है वह यह है कि इस देश, हिन्दुस्थान में हिन्दू नस्ल अपने हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति और हिन्दू भाषा (संस्कृति का स्वाभाविक परिवार और उसकी व्युत्पत्तियाँ) से राष्ट्रीय अवधारणा को परिपूर्ण करती हैं।" (गोलवलकर, 'वी आर अवर नेशनहुड डिफाईन्ड' भारत पब्लिकेशन नागपुर, 1939 के हिन्दी अनुवाद 'हम या हमारी राष्ट्रीयता की परिभाषा' पृष्ठ-148)

इसी तरह हिन्दू महासभा के 19वें अधिवेशन (सन् 1937, अहमदाबाद) में सावरकर ने अपने भाषण में कहाः

"फिलहाल हिन्दुस्तान में दो प्रतिद्वंदी राष्ट्र पास-पास रह रहे हैं... हिन्दुस्तान में मुख्य तौर पर दो राष्ट्र हैं- हिन्दू और मुसलमान" (समग्र सावरकर वांग्मय, पूना, 1963, पृष्ठ-296)

भारत विभाजन के लिए गाँधी और मुस्लिम लीग को गाली देने वाला आरएसएस स्वयं मुस्लिम लीग की तरह कैसे धर्म के आधार पर भारत को बाँटने का पक्षधर था इससे साफ प्रकट होता है।

संघ जब पूरे देश में धर्म के नाम पर बाँटने की अपनी घृणित राजनीति कर रहा था तो शहीद भगतसिंह और उनके साथियों ने देश की आजादी के लिए जनता को एकजुट होने और साम्प्रदायिक झगड़ों से निपटने का यह रास्ता सुझाया। साम्प्रदायिक दंगों पर सन् 1938 में 'किरती' में उनका लेख छपा। उन्होंने लिखाः

"लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए वर्ग चेतना की जरूरत है। गरीब, मेहनतकश व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन पूँजीपति हैं, इसलिए तुम्हे इनके हथकंडों से बचकर रहना चाहिए और इनके हत्थे चढ़ कुछ न करना चाहिए। संसार के सभी गरीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही हैं। तुम्हारी भलाई इसी में है कि धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताकत अपने हाथ में लेने का यत्न करो।"

शहीद भगतसिंह जहाँ धर्म, जाति और रंग के झगड़े मिटाकर दुनियाभर के मेहनतकश लोगों को एक होने की अपील कर रहे हैं वहीं आरएसएस व हिन्दू महासभा लोगों को धर्म के नाम पर बाँट रहें हैं। आज उसी नीति पर चलते हुए भाजपा के प्रधानमन्त्री मोदी दुनियाभर के पूँजीपतियों और देशी पूँजीपतियों की सेवा में लगे हैं तो संघ लोगों को बाँटने की और दंगे कराने की नीति पर मुस्तैद हो गया है। हमें तय करना ही होगा कि हमें भगतसिंह की बातों को मानना है या संघ की।

(नौजवान भारत सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तिका 'कौन देशभक्त, कौन देशद्रोही' से साभार)

संविधान के बारे में सोचने के लिए कुछ अहम सवाल

(पेज 13 से आगे)

का बेशक भरपूर इस्तेमाल करना चाहिए, संवैधानिक वायदों-करारों से फ़ासिस्टों के विश्वासघात को भी उजागर करना चाहिए, संविधान-प्रदत्त अतिसीमित जनवादी अधिकारों के भी अपहरण के ख़िलाफ़ आवाज़ बुलन्द करनी चाहिए, लेकिन ऐसा कोई भी काम नहीं करना चाहिए जिससे इस संविधान का आदर्शीकरण हो और जनता में बेकार के विभ्रम फैलें। जहाँ तक और जब तक गुंजाइश होती है, हम संवैधानिक रास्तों से और संवैधानिक-विधिक दायरे में ही संघर्ष चलाते हैं, पर इन्हें अनुल्लंघनीय लक्ष्मण रेखा मान लेने का विभ्रम जनता में क़त्तई नहीं फैलाया जाना चाहिए। संघर्ष करते हुए जनता इन सीमाओं को खुद पहचानने लगती है और फिर इनके अतिक्रमण की अनिवार्यता को समझने लगती है। तात्कालिक मुद्दों की लडाइयाँ लड़ते हुए हम अपने क्रान्तिकारी शिक्षा और प्रचार के कार्य को इसी दिशा में निर्देशित करते हैं। क्रान्तिकारी बदलाव संविधान और क़ानून की चौहद्दी में क़ैद रहकर नहीं, बल्कि उनको तोड़कर होते हैं। इतिहास में इसका कोई अपवाद नहीं है। हिन्दुत्ववादी फ़ासीवाद के विरुद्ध संघर्ष भी क्रान्तिकारी संघर्ष की ही एक अविभाज्य कड़ी है, इसे बुर्जुआ जनवाद की फिर से बहाली के यूटोपियाई और असम्भव सुधारवादी लक्ष्य तक सीमित नहीं किया जाना चाहिए।

संवैधानिक अधिकारों की हिफ़ाज़त के लिए लड़ने के साथ-साथ संविधान के बारे में सोचने के लिए कुछ अहम सवाल

– कविता कृष्णपल्लवी

आज फ़ासिस्ट इस देश के संविधान को भी व्यवहारतः ताक पर रखकर हमारे अतिसीमित, रहे-सहे जनवादी अधिकारों पर भी डाका डाल रहे हैं और देश में लाखों-लाख लोग इन संवैधानिक अधिकारों की हिफ़ाज़त के लिए सड़कों पर उतर कर लड़ रहे हैं। ऐसे में तय ही है कि हम उन अधिकारों के लिए अवाम के साथ मिलकर लड़ेंगे और फ़ासिस्टों को बेनक़ाब करने के लिए संविधान का हवाला भी देंगे, लेकिन इस प्रक्रिया में संविधान को जनवाद की "पवित्र पुस्तक" या "होली बाइबिल" कत्तई नहीं बनाया जाना चाहिए, इसका आदर्शीकरण या महिमामण्डन करना एक भयंकर अनैतिहासिक और आत्मघाती ग़लती होगी।

किसी भी बुर्जुआ जनवादी देश की आम जनता को अपने जनवादी अधिकारों की लड़ाई लड़ते हुए प्रबोधनकालीन दार्शनिकों के आदर्शों को सन्दर्भ-बिन्दु बनाना चाहिए जो तर्कणा-आधारित इहलौकिकता (सेकुलरिज़्म) और जनवाद की अवधारणा पेश करते हैं न कि किसी देश-विशेष के संविधान को। दुनिया का ज़्यादा से ज़्यादा जनवादी अधिकार देने वाला बुर्जुआ जनवादी देश भी अपनी जनता को उतने जनवादी अधिकार नहीं देता जितना अपने संविधान में दावे और वायदे करता है।

"हम भारत के लोग..." -- भारतीय संविधान की प्रस्तावना के ये शब्द हूबहू वही हैं जिससे 1787 के फिलाडेल्फिया कन्वेंशन ने अमेरिकी संविधान की शुरुआत की थी। गौरतलब है कि इस कन्वेंशन में न तो काली आबादी का प्रतिनिधित्व था न ही इस संविधान को लागू करते हुए अमेरिकी गणराज्य ने दासता का उन्मूलन किया। दासता का उन्मूलन अश्वेत दासों के अनथक संघर्षों के फलस्वरूप एक शताब्दी बाद हुआ। अमेरिकी संविधान की प्रस्तावना में उल्लिखित "हम संयुक्त राज्य के लोग" में स्त्रियों की आधी आबादी भी शामिल नहीं थी, क्योंकि उस समय उन्हें मताधिकार भी प्राप्त नहीं था।

संविधान में आदर्शों की चाहे जितनी लम्बी-चौड़ी लफ़्फ़ाज़ी की जाये, संविधान में लिख देने मात्र से जनता को अधिकार प्राप्त नहीं हो जाते। हाँ, जिन अधिकारों को जनता लड़कर हासिल करती है, उनमें से कई को शासक वर्ग संविधान में संहिताबद्ध करने के लिए बाध्य हो जाता है। यानी जिन देशों में जनता क्रान्तिकारी संघर्षों की लम्बी प्रक्रिया में जनवादी अधिकार हासिल करती है उन देशों के सामाजिक ताना-बाना में जनवाद के तत्व रच-बस जाते हैं और बुर्जुआ संविधान भी किसी हद तक इस स्थिति को प्रतिबिम्बित करने लगते हैं। पश्चिम के जिन देशों में बुर्जुआ जनवाद 'पुनर्जागरण-प्रबोधन-क्रान्ति' की ऐतिहासिक प्रक्रिया से गुज़रकर स्थापित हुआ, वहाँ के सामाजिक ताना-बाना और जनता की चेतना में जनवाद के मूल्य रचे-बसे हैं और इसलिए वहाँ के संविधान किसी हद तक इस वस्तुगत स्थिति को प्रतिबिंबित करते हैं। हालाँकि उन देशों में भी जब संकट के बादल गहराते हैं तो बुर्जुआ वर्ग जनवाद के संवैधानिक वायदों से मुकर जाता है और अपने वर्गीय अधिनायकत्व को नंगे रूप में लागू करने लगता है।

भारत जैसे उत्तर-औपनिवेशिक समाजों की स्थिति कुछ भिन्न है। यहाँ का बुर्जुआ वर्ग 'पुनर्जागरण-प्रबोधन-क्रान्ति' की प्रक्रिया से गुजरकर सत्ता में नहीं आया। वह औपनिवेशिक सामाजिक-आर्थिक संरचना के गर्भ से पैदा हुआ एक रुग्ण-विकलांग-बौना बुर्जुआ वर्ग था जिसने क्रान्ति की जगह 'दबाव-समझौता-दबाव' की रणनीति अपनाकर तथा विश्व-परिस्थितियों एवं जनता की क्रान्तिकारी शक्तियों की कमज़ोरी का लाभ उठाकर सत्ता में आया। यह बुर्जुआ वर्ग अपनी जनता को उतना जनवादी अधिकार भी कत्तई नहीं दे सकता जितना पश्चिम के किसी बुर्जुआ वर्ग ने दिया। यही कारण है कि हमारे देश का संविधान शुरू से अन्त तक कोरी लफ़्फ़ाज़ियों से भरा हुआ है। इन कथित लफ़्फ़ाज़ियों को अगर हम जनवाद के आदर्शों के रूप में पेश करते हैं तो जनता को एक ऐसा संवैधानिक विभ्रम देते हैं कि वह लोक-लुभावन लफ़्फ़ाज़ी के साथ रचे गए संवैधानिक प्रपंच में और अधिक उलझ जाए। दूरगामी तौर पर, आमूलगामी बदलाव के किसी भी संघर्ष के लिए यह आत्मघाती सिद्ध होगा। बेशक, हमें बुर्जुआ संवैधानिक और विधिक दायरे के भीतर अपने जनवादी अधिकारों की ढेरों लड़ाइयाँ लड़नी होती हैं, पर ऐसा करते हुए बुर्जुआ संविधान और बुर्जुआ कानूनों के प्रति जनता में कोई विभ्रम कत्तई नहीं पैदा किया जाना चाहिए। आमूलगामी सामाजिक बदलाव का सीमान्त या क्षितिज जन-समुदाय की निगाहों में बुर्जुआ संविधान या कानून-व्यवस्था बन जाये, ऐसी कोई ऐतिहासिक, आत्मघाती अदूरदर्शिता कदापि नहीं की जानी चाहिए।

उन्नत से उन्नत बुर्जुआ जनवादी संविधान भी बुर्जुआ वर्ग के शासन करने का आधार-ग्रन्थ होता है, वह किसी आमूलगामी सामाजिक-राजनीतिक बदलाव या क्रान्ति की दिशा-निर्देशक संहिता नहीं हो सकता। क्रान्तियाँ संवैधानिक-वैधानिक चौहद्दियों में क़ैद रहकर या किसी संविधान से निर्देशित होकर नहीं चलतीं। वे हमेशा ही इन सीमान्तों का अतिक्रमण करती हैं। अतः, अपने जनवादी और नागरिक अधिकारों के लिए लड़ते हुए हमें बुर्जुआ वर्ग की कमीनगी, कुटिल पाखण्ड और दुरंगेपन और विश्वासघात का भण्डाफोड़ करने के लिए उनके संविधान में उल्लिखित वायदों की बार-बार याद अवश्य दिलानी चाहिए और उन अधिकारों की लड़ाई में संवैधानिक और क़ानूनी रास्तों और निदानों का भी इस्तेमाल करना चाहिए, लेकिन संविधान और कानून-व्यवस्था का महिमा-मण्डन करके जनता में संवैधानिक-विधिक विभ्रम नहीं पैदा करना चाहिए, उसकी क्रान्तिकारी चेतना को कुशाग्र बनाने की जगह कुन्द करने का काम नहीं करना चाहिए। बुर्जुआ लिबरल और सोशल डेमोक्रेट यही काम करते हैं।

दूसरी बात जो महत्वपूर्ण है, वह यह कि आज हमारी लड़ाई मात्र जनवादी और नागरिक अधिकारों की लड़ाई नहीं है। और यह लड़ाई किसी 'बोनापार्टिस्ट' टाइप निरंकुश स्वेच्छाचारी तानाशाह बुर्जुआ सत्ता से है, यह भी बात नहीं है। हमारी लड़ाई सीधे-सीधे फ़ासीवाद से है। हिन्दुत्ववादी फ़ासिस्ट अपनी ऐतिहासिक प्रकृति के अनुरूप आचरण करते हुए बुर्जुआ संविधान में उल्लिखित बेहद सीमित और आधे-अधूरे जनवादी और नागरिक अधिकारों को भी निरस्त कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में हमारी तात्कालिक लड़ाई इन साजिशों के ख़िलाफ़ होगी और अपने संवैधानिक अधिकारों के लिए होगी, पर यह केवल एक तात्कालिक लड़ाई है, फ़ासीवाद के ख़िलाफ़ जनता की लड़ाई इन्हीं संवैधानिक चौहद्दियों में सीमित कदापि नहीं हो सकती।

इसलिए भारतीय संविधान को वस्तुगत तौर पर भी आदर्शीकृत करने की यदि कोई कोशिश की जाती है तो यह एक प्रतिगामी कदम होगा, संवैधानिक सुधारवाद होगा। इस तात्कालिक लड़ाई के आसन्न मुद्दों पर हम बुर्जुआ जनवादियों और सामाजिक जनवादियों के साथ भी बेहिचक खड़े होंगे, पर उनका अन्तिम लक्ष्य हमारा अन्तिम लक्ष्य नहीं हो सकता। ईमानदार से ईमानदार बुर्जुआ डेमोक्रेट और सोशल डेमोक्रेट इस विभ्रम और यूटोपिया के शिकार होते हैं कि फ़ासीवाद की जगह आदर्श रूप में बुर्जुआ जनवाद की स्थापना की जानी चाहिए। बुर्जुआ जनवाद की सीमान्तों से आगे वे सोचते ही नहीं। सच यह है कि आज उस हद तक भी बुर्जुआ जनवाद की वापसी सम्भव नहीं जैसी आज से 70-80 साल पहले सम्भव थी। पूँजीवाद के ढाँचागत संकट के चलते फ़ासीवाद की जगह यदि कोई बुर्जुआ जनवादी सत्ता बीच-बीच में आयेगी भी तो वह बोनापर्टिस्ट टाइप कोई निरंकुश सत्ता होगी जो जनता को नाम मात्र का ही जनवादी अधिकार देगी, और उस समय भी, फ़ासीवाद एक घोर जन-विरोधी बर्बर शक्ति के रूप में समाज में मौजूद रहेगा और कहर बरपा करता रहेगा। याद कीजिए, कांग्रेस के शासन-काल में भी हिन्दुत्ववादियों का उत्पात जारी रहा है पिछले तीन दशकों के दौरान। और यह भी याद रखिये कि मज़दूरों, मेहनतक़शों, दलितों, आदिवासियों, स्त्रियों और क्रान्तिकारी आन्दोलनों को कुचलने में कांग्रेस ने भी कभी कोई कोताही नहीं बरती। बेर्टोल्ट ब्रेष्ट ने कहा था कि जो फ़ासीवाद से लड़ने की बात करते हुए पूँजीवाद से लड़ने की बात नहीं करता, वह फ़ासीवाद से नहीं लड़ सकता। फिर एक जगह वह यह भी कहते हैं कि जो पूँजीवाद से लड़ने की बात करता है लेकिन फ़ासीवाद से नहीं लड़ता, वह भी वस्तुतः पूँजीवाद से लड़ नहीं सकता।

इन दिनों जनान्दोलनों के दौरान संविधान की प्रस्तावना के पाठ का एक चलन चला हुआ है। ऐसा करके हम कहीं न कहीं जनता के बीच संविधान को "जनवाद के आधार-ग्रन्थ" के रूप में आदर्शीकृत करते हैं और एक विभ्रम पैदा करते हैं। प्रस्तावना कोरी लफ़्फ़ाज़ी है। भारतीय गणराज्य शब्दों के वास्तविक अर्थों में सम्प्रभुता-सम्पन्न है ही नहीं। नव-उदारवाद और फ़ासीवाद के दौर के पहले भी भारत साम्राज्यवादी लूट और दबाव का शिकार था और भारतीय बुर्जुआ वर्ग साम्राज्यवादियों का तब भी जूनियर पार्टनर ही था।

यह समाजवादी भी नहीं है। नेहरूकालीन राजकीय पूँजीवाद को समाजवाद कहना एक मूर्खता होगी। वह "कल्याणकारी राज्य" के बुर्जुआ कीन्सियाई नुस्खों तक को एक सीमित रूप में ही लागू कर पाया। भारतीय संविधान में उल्लिखित धर्मनिरपेक्षता ऐतिहासिक अर्थों में धर्मनिरपेक्षता है ही नहीं। वह धर्मनिरपेक्षता को 'सर्व-धर्म-सद्भाव' के रूप में परिभाषित करती है। धर्म-निरपेक्षता का मतलब है कि राजनीति और सार्वजनिक जीवन में धर्म की कोई दखल न हो और धर्म के निजी विश्वास के रूप में अनुपालन की नागरिकों को पूरी आज़ादी हो। भारत में ऐसा कभी नहीं रहा। राजनीति, शिक्षा और सार्वजनिक जीवन में धर्म की दखलंदाजी फासिस्टों के सत्तारूढ़ होने के पहले भी थी, धार्मिक अल्पसंख्यकों के उत्पीड़न में राजकीय एजेंसियों की भी सक्रिय भूमिका हुआ करती थी, शिक्षा और "जन-कल्याण" की तमाम संस्थाएँ धार्मिक सम्प्रदाय चलाया करते थे, राजनीति में धर्म का खुलेआम इस्तेमाल होता था और धार्मिक ध्रुवीकरण की आंच पर कांग्रेस सहित अन्य बुर्जुआ पार्टियाँ भी अपनी रोटियाँ सेंका करती थीं। इसी संविधान के लागू होने के दौरान दलितों और अल्पसंख्यकों का उत्पीड़न आज़ाद भारत में निर्बाध जारी रहा है। इसी संविधान के प्रावधानों के तहत आपातकाल लागू हुआ था। इसी संविधान के काल में नेहरू ने शेख अब्दुल्ला और नम्बूदिरिपाद की चुनी हुई सरकारों को बर्खास्त किया था। नक्सलबाड़ी किसान विद्रोह और क्रान्तिकारी आन्दोलन का दमन, नेल्ली नरसंहार, नन्दीग्राम, सिंगुर, सलवा जुडूम... – यह सबकुछ इसी संविधान के तहत हुआ।

हमें यह भी याद रखना चाहिए कि हमारे देश में 'संवैधानिक उपचार' तक सिर्फ़ मुट्ठी भर पढ़ी-लिखी प्रबुद्ध आबादी की ही पहुँच हो पाती है। बहुसंख्यक आम आबादी जैसे-तैसे 'क़ानूनी उपचार' तक ही पहुँच पाती है। और औपनिवेशिक कानून-व्यवस्था और पुलिस-प्रशासन के ढाँचे के कारण वहाँ भी उसे न्याय बहुत कम मामलों में ही मिल पाता है। अन्त में, यह भी भूलने की ज़रूरत नहीं है कि संविधान की प्रस्तावना में जिन महत उद्देश्यों की बड़बोली घोषणा की गयी है, वह देश के 15 प्रतिशत अभिजातों द्वारा चुनी गयी संविधान सभा के सदस्यों ने पूरी भारतीय जनता की ओर से कर दी थी। वह संविधान सभा सार्विक मताधिकार के आधार पर चुनी ही नहीं गयी थी। जिस संविधान को कुछ लोग जनवाद की "पवित्र पुस्तक" बताने में लगे हैं, उसमें आदर्शों की तमाम लफ़्फ़ाज़ियाँ दुनिया के विभिन्न संविधानों से कट-पेस्ट करके ले ली गयी हैं,लेकिन जहाँ तक मूल अन्तर्वस्तु का सवाल है, इसकी 395 में से 250 धाराएँ 1935 के उसी 'गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट' से से ज्यों की त्यों उठायी गयी हैं, जिसे नेहरू तक ने उस समय 'गुलामी का काला चार्टर' कहा था।

यह संविधान राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धान्तों के तहत ऊँचे आदर्शों और लुभावने वायदों का पूरा झुनझुना बजाता है पर उनके क्रियान्वयन का कोई प्रावधान नहीं करता। सम्पत्ति के 'पवित्र अधिकार' को तो हमारे देश में क़ानूनी अधिकार का दर्जा हासिल है लेकिन काम करने या रोज़गार के अधिकार को हमारा संविधान मूलभूत अधिकार का दर्जा नहीं देता, न ही हमारे क़ानून इसकी कोई गारण्टी देते हैं। इस बात पर कोई आश्चर्य नहीं होता कि अपनी गोटी लाल करने के लिए तमाम दलितवादी बुर्जुआ नेता अम्बेडकर की नायक-पूजा और देव-पूजा करते हुए संविधान को अप्रश्नेय "पवित्र पुस्तक" घोषित कर देते हैं और इस बात को सिरे से गोल कर जाते हैं कि 5-6 वर्ष बीतते ही अम्बेडकर का संविधान से पूरी तरह मोहभंग हो गया था और उसे जला देने तक की बात वह करने लगे थे।

लुब्बेलुब्बाब यह कि हमें अपने जनवादी और नागरिक अधिकारों की तथा धर्म-निरपेक्षता की लड़ाई लड़ते हुए संवैधानिक निदानों और प्रावधानों

(पेज 12 पर जारी)

हँसी भी फ़ासीवाद-विरोधी संघर्ष का एक हथियार है!

रुडोल्फ़ हर्ज़ोग जर्मनी के एक प्रसिद्ध इतिहासकार और फिल्म-निर्माता हैं। वह विख्यात फिल्म-निर्देशक वर्नर हर्ज़ोग के बेटे हैं! उनकी एक डाक्यूमेंट्री 'लाफिंग विद हिटलर' नात्सी दौर में जनता में प्रचलित चुटकुलों पर और इस बात पर केन्द्रित है कि जनता फासिस्टों का मज़ाक उड़ाकर किस प्रकार अपनी नफ़रत और प्रतिरोध की भावना का इज़हार करती थी। यह डाक्यूमेंट्री जर्मनी के चैनल वन और बीबीसी पर बहुत लोकप्रिय हुई थी।

2011 में रुडोल्फ़ हर्ज़ोग की पुस्तक 'डेड फ़नी' प्रकाशित हुई, जिसका अंग्रेज़ी सहित कई भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। इस पुस्तक में हर्ज़ोग ने उन तमाम मज़ाकों और चुटकुलों को शामिल किया है जो हिटलर के शासन-काल में आम लोग फ़ासिस्टों के बारे में बनाते थे, एक दूसरे के कानों में फुसफुसाते थे और निजी बैठकियों में सुनाते थे। इनमें वे चुटकुले भी शामिल हैं जो कंसंट्रेशन कैम्पों में बन्द लोग आपस में सुनाते थे और मौत के साये तले ठहाके लगाते थे।

हर्ज़ोग की मान्यता है कि ये चुटकुले फासिज्म और दूसरे विश्वयुद्ध के इतिहास का 'खोया हुआ अध्याय' हैं। उनका कहना है कि ये चुटकुले बताते हैं कि सभी जर्मन नात्सी प्रचार से सम्मोहित नहीं थे। आम लोग खिल्ली उड़ाकर भी फासिस्टों के आतंक-राज का प्रतिरोध करते थे। ये चुटकुले भयानक चुप्पी और कायरता के बरक्स प्रेरक साहस की और जनता की सर्जनात्मकता और जिजीविषा की कहानी भी बयान करते हैं। रुडोल्फ़ ने ऐसी कई घटनाओं की भी चर्चा की है जब ऐसे ही किसी चुटकुले के कारण कई लोग फाँसी के तख्ते या कंसंट्रेशन कैम्प तक जा पहुँचे थे! ये चुटकुले फासिज्म की भयावहता के साथ ही उसकी ऐतिहासिक हास्यास्पदता का भी दस्तावेज़ पेश करते हैं!

रुडोल्फ़ हर्ज़ोग की इस विषय में दिलचस्पी सबसे पहले चार्ली चैप्लिन की 'द ग्रेट डिक्टेटर' और एर्न्स्ट ल्यूबिश्च की 'टु बी ऑर नॉट टु बी' फ़िल्में देखकर पैदा हुई थी। फिर जब उनकी एक चचेरी दादी अमेरिका चली गयीं तो उनके फ्लैट की सफाई करते हुए रिश्तेदारों को हिटलरकालीन चुटकुलों का एक टाइप किया हुआ संकलन मिला जो हर्ज़ोग को बेहद दिलचस्प और एक ऐतिहासिक दस्तावेज़ सरीखा लगा! दिलचस्प बात यह थी कि हर्ज़ोग के नाना को छोड़कर उनके दादाओं की पूरी पीढ़ी और उनके परिवार नात्सियों के प्रचंड समर्थक थे। फिर हर्ज़ोग ने दो वर्षों तक मेहनत करके ऐसे किस्सों और उनसे जुड़े प्रसंगों को इकट्ठा किया और अपनी किताब तैयार की। इस पुस्तक के कुछ चुटकुलों और उनसे जुड़ी घटनाओं को हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं!

*

जोसेफ़ म्यूलर उत्तरी जर्मनी के एक छोटे से कैथोलिक चर्च का पादरी था। उसने कहीं कुछ लोगों के बीच एक किस्सा गढ़कर सुनाया कि एक बार उसके पास युद्ध में घायल एक मरणासन्न सैनिक लाया गया। सैनिक ने पादरी से कहा कि उसकी अंतिम इच्छा उन लोगों को देखने की है जिनके लिए वह मर रहा है! फिर हिटलर और गोएबल्स की तस्वीरें लाई गयीं और उसके दाएँ-बाएँ रख दी गयीं! फिर सैनिक ने कहा,"अब मैं जीसस क्राइस्ट की तरह दो अपराधियों के बीच मर रहा हूँ!" (कहा जाता है कि जीसस को जब सलीब पर लटकाया गया तो उनके आजू-बाजू दो अपराधियों को भी लटकाया गया था)

उक्त पादरी का बेटा एक अंध-भक्त नात्सी था। उसने पिता के चुटकुले की पार्टी में रिपोर्ट की! पादरी को तुरंत गिरफ्तार कर लिया गया और 'पितृभूमि की प्रतिरक्षा-शक्ति को क्षति पहुँचाने के जुर्म' में फाँसी पर चढ़ा दिया गया!

*

हिटलर और गोएरिंग बर्लिन के रेडियो टावर पर खड़े थे! नीचे खड़ी भीड़ को देखते हुए हिटलर ने कहा,"मैं कुछ ऐसा करना चाहता हूँ कि बर्लिनवासियों के चेहरे खुशी से खिल उठें!" गोएरिंग ने फ़ौरन उत्तर दिया,"तुम इस टावर से कूद क्यों नहीं जाते ?"

मारियान्ने नामक स्त्री ने यह चुटकुला अपने कार्यस्थल पर सुनाया। बात अधिकारियों तक पहुँची और उस औरत को फाँसी दे दी गयी, बिना इस बात का ख़याल किये हुए कि उस औरत का पति एक सैनिक था जो नात्सियों की ओर से लड़ते हुए युद्ध में मारा जा चुका था!

*

कुछ और :

शीत राहत कोष के एक पोस्टर पर लिखा था : "जाड़े या भूख से अब किसी को भी मरने नहीं दिया जाएगा।" पढ़कर एक मज़दूर अपने साथी से बोला, "तो अब वे हमें यह भी करने की इजाज़त नहीं देंगे!"

*

फ़ोन की घण्टी बजी और कोई बोला, "हेलो, क्या मैं म्यूलर से बात कर सकता हूँ?"

"कौन म्यूलर? मैं श्मिडट बोल रहा हूँ!"

"सॉरी, मैंने ग़लत आदमी को डायल कर दिया!"

"कोई बात नहीं! पिछले चुनाव में तो ज्यादा लोगों ने यही किया था!"

*

एक रसोइया बिना सुअर की चर्बी डाले आलू फ्राई कर रहा था और ओवन के ऊपर स्वास्तिक चिह्न वाला नात्सी झंडा हिला रहा था! पूछने पर बोला,"कोई बात नहीं, इस झंडे को देखकर बहुत सारे चर्बीले सुअर खुद ही बाहर आ जाते हैं!"

*

हिटलर एक पागलखाने का दौरा कर रहा था! सभी मरीज़ 'हेल हिटलर' का नारा लगाते हुए उसे सलामी दे रहे थे, सिर्फ़ एक आदमी ऐसा नहीं कर रहा था! हिटलर ने जब उससे कारण पूछा तो वह बोला," मैं पागल नहीं हूँ, मैं अर्दली हूँ!"

*

एक नात्सी उच्चाधिकारी ने स्विटज़रलैंड का दौरा करते हुए एक सरकारी इमारत के बारे में पूछा! स्विस मेज़बान ने कहा, "वह हमारी नौसेना मंत्रालय का मुख्यालय है।"

"स्विटज़रलैंड के पास तो बस दो या तीन लड़ाकू जहाज़ हैं। फिर आपलोगों को नौसेना मंत्रालय की ज़रूरत ही क्या है?"

"क्यों नहीं? जर्मनी के पास भी तो न्याय मंत्रालय है!" स्विस ने फ़ौरन उत्तर दिया!

*

बर्गरब्रौकेलर में हिटलर की हत्या की जो कोशिश हुई उसमें 10 लोग मारे गए, 50 घायल हुए और 6 करोड़ उल्लू बन गए!

*

स्कूल की दीवार पर हिटलर और गोएरिंग की दो तस्वीरें टँगी थीं और उनके बीच की जगह खाली थी!

"इस बीच की जगह को कैसे भरें ?" शिक्षक ने पूछा!

एक छात्र तुरत बोल पडा,"वहाँ ईसा मसीह की तस्वीर टाँग दी जाए! बाइबिल बताती है कि उन्हें दो अपराधियों के बीच सलीब पर चढ़ाया गया था!"

*

हिटलर और उसका ड्राइवर कार से देहाती इलाके से गुज़र रहे थे! कार से टकराकर एक मुर्गी मर गयी। हिटलर ने ड्राइवर से कहा,"कोई बात नहीं, मैं जाकर किसान से कहूँगा कि मैं फ्यूहरर (हिटलर) हूँ और वह समझ जाएगा!" उसने ऐसा ही किया मगर पिछवाड़ा सहलाता हुआ वापस आया जहाँ किसान ने एक लात जमाई थी! कुछ देर बाद फिर दुर्घटना हुई। कार से टकराकर एक सुअर मर गया! हिटलर ने ड्राइवर से कहा कि इस बार तुम जाओ। ड्राइवर ने आज्ञापालन किया। काफी देर बाद जब वह लौटा तो पिये हुए था और उसके हाथ में ढेरों उपहारों की टोकरियाँ थीं। हिटलर ने पूछा, "तुमने किसान से क्या कहा?" ड्राइवर ने कहा, "कुछ ख़ास नहीं। मैंने कहा कि मैं हिटलर का ड्राइवर हूँ और वह सुअर मेरी कार से टकराकर मर गया!"

*

दावे के साथ यह कहा जा सकता है कि पिछले दशकों के दौरान मोदी-शाह, आडवाणी, राजनाथ सिंह, योगी आदि-आदि तमाम हिन्दुत्ववादी फासिस्टों के ख़िलाफ़ जितने चुटकुले और किस्से जनता के बीच लोकप्रिय रहे हैं, वह इतिहास का एक रिकॉर्ड है। हिटलर और मुसोलिनी के बाद बुश और ट्रम्प पर सबसे अधिक चुटकुले बने। सोवियत संघ के और पूर्वी यूरोप के भ्रष्ट-निरंकुश संशोधनवादी पार्टी नौकरशाहों के विरुद्ध भी वहाँ की जनता में काफी चुटकुले बनते और चलते थे। पर भारत के हिन्दुत्ववादी फासिस्टों के विरुद्ध रोज़ाना बनने और वायरल होने वाले चुटकुलों ने तो सभी कीर्तिमान ध्वस्त कर दिये।

एक दिलचस्प बात यह भी है कि मोदी और भाजपा के अधिकांश नेता रोजाना जो बोलते और करते हैं, वह सबकुछ अपने आपमें चुटकुले से कम नहीं होता। दुनिया में कभी भी जालिमों और हत्यारों ने जनता को इतना हँसाया नहीं होगा। मोदीकालीन किस्सों-चुटकुलों का संग्रह करते हुए यह फ़र्क़ बहुत ध्यान से करना होगा कि कौन चुटकुला है और कौन सी सच्ची घटना!

इतिहास के सजग युवा अध्येताओं और शोधार्थियों को मोदी युग के सभी चुटकुलों-किस्सों-मज़ाकों-कार्टूनों-कैरीकेचरों का संकलन अभी से तैयार करते रहना चाहिए। इस अन्धकार युग का इतिहास जब भी लिखा जाएगा तो कई खण्डों का वह संकलन उस इतिहास का एक ज़रूरी हिस्सा होगा और उसे फासीवाद-विरोधी लोकप्रिय साहित्य में भी शुमार किया जाएगा!

जालिम हुक्मरानों की खिल्ली उड़ाकर जनता अपनी निर्भीकता और नफ़रत का इज़हार करती है, अपनी जिजीविषा और युयुत्सा और जिंदादिली को अभिव्यक्ति देती है! वह जालिमों को उनकी हैसियत-औकात बताती है। खिल्ली उड़ाना भी एक राजनीतिक हथियार है! इसका खूब इस्तेमाल होना चाहिए! इन जाहिल, गधे, गोबरदिमाग ज़ालिम अपराधी फासिस्टों के ख़िलाफ़ खूब चुटकुले बनने चाहिए और प्रचलित किये जाने चाहिए। अत्याचारी सत्ता के आसपास बुना गया रहस्यावरण ध्वस्त करने में चुटकुलों की भी एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। चुटकुले हमें याद दिलाते रहते हैं कि 'राजा नंगा है!'

– कविता कृष्णपल्लवी

कविताएँ

कचोटती स्वतंत्रता

– तुर्की के महाकवि नाज़िम हिकमत

तुम खर्च करते हो अपनी आँखों का शऊर,
अपने हाथों की जगमगाती मेहनत,
और गूँधते हो आटा दर्जनों रोटियों के लिए काफ़ी
मगर ख़ुद एक भी कौर नहीं चख पाते;
तुम स्वतंत्र हो दूसरों के वास्ते खटने के लिए–
अमीरों को और अमीर बनाने के लिए तुम स्वतंत्र हो।

जन्म लेते ही तुम्हारे चारों ओर
वे गाड़ देते हैं झूठ कातने वाली तकलियाँ
जो जीवनभर के लिए लपेट देती हैं तुम्हें झूठों के जाल में।
अपनी महान स्वतंत्रता के साथ
सिर पर हाथ धरे सोचते हो तुम
ज़मीर की आज़ादी के लिए तुम स्वतंत्र हो।

तुम्हारा सिर झुका हुआ मानो आधा कटा हो गर्दन से,
लुंज-पुंज लटकती हैं बाँहें,
यहाँ-वहाँ भटकते हो तुम अपनी महान स्वतंत्रता में:
बेरोज़गारी रहने की आज़ादी के साथ
तुम स्वतंत्र हो।

तुम प्यार करते हो देश को
सबसे करीबी, सबसे क़ीमती चीज़ के समान।
लेकिन एक दिन, वे उसे बेच देंगे,
उदाहरण के लिए अमेरिका को
साथ में तुम्हें भी, तुम्हारी महान आज़ादी समेत
सैनिक अड्डा बन जाने के लिए तुम स्वतंत्र हो।

तुम दावा कर सकते हो कि तुम नहीं हो
महज़ एक औज़ार, एक संख्या या एक कड़ी
बल्कि एक जीता-जागता इंसान–
वे फ़ौरन हथकड़ियाँ जड़ देंगे तुम्हारी कलाइयों पर।
गिरफ़्तार होने, जेल जाने या फिर फाँसी चढ़ जाने के लिए
तुम स्वतंत्र हो।

नहीं है तुम्हारे जीवन में लोहे, काठ
या टाट का भी परदा;
स्वतंत्रता का वरण करने की कोई ज़रूरत नहीं:
तुम तो हो ही स्वतंत्र।
मगर तारों की छाँह के नीचे
इस क़िस्म की स्वतंत्रता कचोटती है।

अनुवाद : **सोमदत्त**

ज़िम्बाब्वे के प्रमुख कवि चेन्जेराई होव की चार कविताएँ

इनकार

पुलिस जब आ ही जाये ऐन सिर पर
और उसकी लाठी नृत्य करने लगे
तुम्हारी पीठ पर
इनकार कर देना झुकने से।

बिच्छू जब आ ही जायें
और डंक मार दें चाहे
तुम्हारी आँखों और कानों पर
इनकार कर देना उनके वश में आने से।

दुनिया जब घूमती नज़र आये गोल-गोल
यातना-कक्ष के भीतर
साफ़ इनकार कर देना चाहिये
तुम्हारे दिल को मुरझाने से।

तुम सुनना बच्चों की आवाज़ों को
देखना रंगत हमारे संगीत की
और नाच उठना मन ही मन
समर्पण की मौत पर।

जिस क्षण शक्तिसम्पन्न लोग
लूटने में लगे हों तमगे
और अशक्त चुन रहे हों
तिनके शासन के,
तुम इनकार कर देना घुटने टेकने से
फुटपाथ पर छल और कपट के।

एक तानाशाह से

(एक पाकिस्तानी कवि की याद में, जिसे देशनिकाला दे दिया गया था)

तुम्हारे दौर में
तुमने दूर कर दिया हमसे
हमारी स्वतंत्रता के सार को।
तुम्हारे दौर में
कमज़ोर लोगों ने हिफ़ाज़त की
तुम्हारी दुर्बलताओं की,
और धरती रोती रही लगातार,
चन्द्रमा तक स्याह पड़ गया था
तुम्हारे दौर में।

हम

केवल हम ही नहीं थे
पीछे छूट जाने वालों में,
अंजीर का पेड़ भी खड़ा था
हमारे साथ ही।

केवल हम ही नहीं थे
पीछे छूट जाने वालों में
जब तक कि आसमान
इनकार करता रहा था
हमें वीज़ा देने में।

शुभ रात्रि, प्रिये
हम इन्तज़ार करेंगे यों ही
किसी और फूल के खिलने तक।

सत्ता

इस तरह पहन लेते हैं हम
सत्ता को :
सीटियों और बन्दूकों और बारूद के साथ
सुरक्षा सैनिक
जगमगाती रोशनियाँ
काँच की धुँधली खिड़कियाँ
कतारें मोटरगाड़ियों की
ख़िताबें, पदवियाँ
कम से कम हाथ मिलाना
कम से कम मुस्कुराना
कम से कम सन्ताप
हम पहन लिया करते हैं सत्ता को
बिल्कुल महामारी की तरह

अंग्रेज़ी से अनुवाद : **राजेश चन्द्र**

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2020-2022
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

संघी नेताओं के बच्चे ऐशो-आराम में पलेंगे : नेता, सेठ और अफ़सर बनेंगे

जनता के बच्चे ज़हरीले प्रचार के नशे में पागल हत्यारे बनेंगे

फ़ासिस्ट प्रचार की ज़हरीली ख़ुराक पर लम्बे समय तक पलकर तैयार हुए दो पगलाये हुए नौजवानों ने दिल्ली में शान्ति से प्रदर्शन कर रहे लोगों पर गोलियाँ चलायीं। जगह-जगह ऐसे ही नफ़रत से पागल नौजवानों की भीड़ इकट्ठा करके "गोली मारो सालों को" के नारे लगवाये जा रहे हैं। पुलिस चुपचाप तमाशा देख रही है और फिर उन हमलावरों को बेशर्मी के साथ बचाने में जुट जा रही है।

इसी तरह तैयार किये गए जुनूनी हत्यारों ने कभी दाभोलकर, पानसारे, कलबुर्गी और गौरी लंकेश की हत्या की, मॉब लिंचिंग में दर्जनों बेगुनाहों को बर्बरतापूर्वक सड़क पर घसीटकर मौत के घात उतारा, दंगों में वीभत्स कारनामों को अंजाम दिया और सड़कों पर, कैम्पसों में आतंक फैलाते रहे।

अब फासिस्ट मुहिम का अगला चरण हमारे सामने है। अब राज्य-सत्ता के सशस्त्र दस्ते भारतीय हिटलर, हिमलर, गोएबल्स और गोएरिंग के आतंकी हत्यारे दस्तों के साथ खुलेआम मिलकर काम कर रहे हैं। हत्यारे उनके संरक्षण में अपने कारनामों को अंजाम दे रहे हैं और आगे ऐसा खेल और खुलकर खेला जाएगा।

आरएसएस अब बाक़ायदा सैनिक स्कूल खोलने जा रहा है। इसी वर्ष बुलन्दशहर में उसका पहला स्कूल शुरू हो जायेगा। कहने के लिए इसका उद्देश्य भारतीय सेना के लिए अफ़सर तैयार करना होगा, मगर आरएसएस से परिचित कोई भी व्यक्ति यह समझ सकता है कि इसके ज़रिए बच्चों में किसके विरुद्ध हिंसक मनोवृत्ति भरी जायेगी।

देशभर में आरएसएस की हज़ारों शाखाओं में बच्चों और युवाओं को किस तरह की सीख दी जाती है, यह किसी से छिपा नहीं है। यही शाखाएँ वे कारख़ाने हैं जहाँ गोपाल शर्मा और कपिल गुज्जर जैसे नफ़रत में पागल ज़ॉम्बी तैयार किये जाते हैं। छोटे-छोटे बच्चों को धर्मान्धता और अतिराष्ट्रवाद की ऐसी घुट्टी पिलाई जाती है कि वे उन्मादी भीड़ का हिस्सा बन जाते हैं। इस तरह बर्बरों की एक फौज तैयार की जाती है जो विश्वविद्यालयों और पुस्तकालयों पर हमले करते हैं, दंगे और मॉब लिंचिंग करते हैं, पार्कों में प्रेमी जोड़ों को दौडाते हैं और गुजरात-2002 जैसी घटनाओं को अंजाम देते हैं। गोपाल और कपिल जैसे हज़ारों हैं और उनके पीछे संघ के थिंक टैंक और प्रचारक हैं, भाजपा के नेता हैं, मीडिया के उन्मादी, गोएबल्स की जारज संतानें हैं।

अब पुलिस बल, नौकरशाही और न्यायपालिका में भी संघी घुसपैठ हो चुकी है, इनके बड़े हिस्से का साम्प्रदायीकरण हो चुका है। इस तरह एक धुर-प्रतिक्रियावादी सामाजिक आन्दोलन खड़ा किया गया है, जिसके पीछे पूँजी और सत्ता की ताक़त मुस्तैद खड़ी है। इसीलिए, यह समझना ज़रूरी है कि फ़ासीवाद के विरुद्ध लड़ाई सरकार बदलने की नहीं, बल्कि व्यवस्था बदलने की है। यह लम्बी और कठिन लड़ाई है। हमें मेहनतकशों और मध्य वर्ग के जुझारू प्रगतिशील युवाओं के दस्ते संगठित करने होंगे। हमें फासीवाद के घोर प्रतिगामी सामाजिक आन्दोलन को शिकस्त देने के लिए आम मेहनतकश अवाम का प्रगतिशील सामाजिक आन्दोलन तृणमूल स्तर से खड़ा करना होगा। देश एक ज्वालामुखी के दहाने की और लुढ़कता जा रहा है। इसे बचाने का रास्ता एक कठिन सामाजिक-राजनीतिक संघर्ष का रास्ता है जो मेहनत, क़ुरबानी और हिम्मत की माँग करता है।

जिन पीले बीमार चेहरे वाले मध्यवर्गीय युवाओं को, और मेहनतक़श आबादी की जिन विमानवीकृत, वर्ग-च्युत सन्तानों को दिमाग से खाली, फटी आँखों वाले प्रचार-सम्मोहित हत्यारों में तब्दील किया जा रहा है, उनके पीछे चमकते चर्बीले चेहरों वाले हिन्दुत्ववादी फासिस्ट नीति-निर्माता, प्रचारक और नेता बैठे हैं। वे ऐसे हत्यारे हैं जिनकी आस्तीनों पर लहू के सुराग़ कभी नज़र नहीं आते।

दंगाई और जुनूनी ज़ॉम्बी तैयार करने वाली फ़ैक्ट्री के मैनेजर, इंजीनियर, सुपरवाइज़र वे हैं जो नागपुर में बैठे चिंतन और नीति-निर्देश का काम कर रहे हैं, संसद में भगवा पटका डाले बुर्जुआ जनवाद का खेल खेल रहे हैं, चैनलों पर बकवास करते हुए ज़हरीले नागों की तरह ज़हर की पिचकारी छोड़ रहे हैं और मंचों से ड्रैगन की तरह आग की लपटें फेंक रहे हैं। इनके अपने बेटे-बेटियाँ सुरक्षित और विलासितापूर्ण माहौल में, देश या विदेश में पलते और पढ़ते हुए पूँजी और सत्ता का खेल खेलना सीख रहे हैं, क्योंकि उन्हें ज़ॉम्बी नहीं, ज़ॉम्बी को नियंत्रित करने वाला बनना है। फ़ासिस्ट ज़ॉम्बी बनाने के लिए चुनते हैं आम घरों के पीले-बीमार चेहरे वाले कुण्ठित, अवसादग्रस्त, अर्द्ध-मनोरोगी टाइप युवाओं को या समाज के तलछट में पालने वाले उन अमानवीकृत आवारा, लम्पटों और गुण्डों को जो इस सड़ी हुई सामाजिक व्यवस्था के ही उत्पाद होते हैं। सड़ी-गली पुरातन परम्पराओं-संस्थाओं के बाड़े में इन ज़ॉम्बी बनाये जाने वालों को पाला जाता है, इन्हें अतीत की प्रेत-पूजा, धर्मान्धता और अति-राष्ट्रवाद का चारा-चुग्गा खिलाया जाता है और बीच-बीच में इस बात की जाँच की जाती है कि इनके कायान्तरण की प्रक्रिया अभी पूरी हुई है या नहीं।

हमें किसी भ्रम में नहीं रहना चाहिए। अवाम पर कहर बरपा करने वाली फ़ासिस्ट नीतियों के ख़िलाफ़ जैसे-जैसे

आरएसएस की शाखाओं में बच्चों को नफ़रत और हिंसा के पाठ पढ़ाये जाते हैं। मगर यही लोग आज सवाल उठा रहे हैं कि अपने अधिकारों की रक्षा के लिए हो रहे प्रदर्शनों में लोग बच्चों को लेकर क्यों आ रहे हैं!

युवाओं, मज़दूरों, आम मध्य वर्ग के लोगों और स्त्रियों का सड़कों पर उतरना बढ़ता जाएगा, वैसे-वैसे इन भारतीय हिटलरी दस्तों का ख़ूनी उत्पात भी बढ़ता जाएगा और सत्ता का शस्त्र-बल पूरी तरह से उनकी पीठ पर, और उनके साथ खड़ा होगा। निश्चय ही देश में हिन्दुत्ववादी फ़ासिज़्म के ख़िलाफ़ एक जन-उभार की शुरुआत हो चुकी है, पर लड़ाई अभी लम्बी चलेगी, फ़ैसला इतनी जल्दी नहीं होना है। हमें एक लम्बी लड़ाई के लिए मानसिक तौर पर तैयार रहना होगा और लोगों को तैयार करना होगा। फ़ासिज़्म के विरुद्ध संघर्ष कई चढ़ावों और उतारों से होकर आगे बढ़ेगा, ज्वार और भाटे की तरह। हमारे पास उतार के दौर के लिए भी रणनीति होनी चाहिए।

फ़ासिस्ट अगर सरकार में नहीं होंगे, तब भी वे ग्रासरूट स्तर पर अनवरत अपने काम में लगे रहेंगे और समय-समय पर आतंक और ख़ूनी उत्पात का खेल खेलते रहेंगे। इसलिए यह समझ लेना होगा कि फ़ासीवाद को केवल चुनाव में हराकर और सत्ता से हटाकर निर्णायक तौर पर नहीं हराया जा सकता। उन्हें नेस्तनाबूद कर देना ही एकमात्र विकल्प हो सकता है। इतिहास का भी यही सबक है।

फ़ासीवाद तृणमूल स्तर से एक कैडर-आधारित संगठन द्वारा खड़ा किया गया धुर-प्रतिक्रियावादी सामाजिक आन्दोलन है जो वित्तीय पूँजी की सेवा करता है। यह संकटग्रस्त पूँजीवाद की उपज है। इसका मुकाबला सिर्फ़ तृणमूल स्तर से व्यापक मेहनतक़श जनसमुदाय और रेडिकल प्रगतिशील मध्यवर्गीय युवाओं का एक जुझारू प्रगतिकामी सामाजिक आन्दोलन खड़ा करके, तथा, फ़ासिस्ट दस्तों का सड़कों पर मुकाबला करने के लिए मज़दूरों और क्रान्तिकारी युवाओं के दस्ते संगठित करके ही किया जा सकता है। बेशक, यह एक लम्बा और कठिन काम है, पर अन्तिम निर्णायक विकल्प यही है। इसलिए, फ़ौरी तौर पर फ़ासिस्टों की सत्ता के ख़िलाफ़ जो भी मुद्दा-केन्द्रित जन-संघर्ष उठ खड़े होते हैं उनमें पूरी ताक़त से भागीदारी करते हुए हमें अपने दूरगामी लक्ष्य के लिए काम करते रहना होगा और आम लोगों को अपनी इस बात का कायल बनाना होगा कि तात्कालिक आन्दोलन के मुद्दों पर फ़ासिस्ट अगर पीछे भी हट जायें तो यह संघर्ष का अन्त नहीं है। संघर्ष निश्चय ही लम्बा होगा। यह याद रखना होगा कि अन्तिम निष्कर्ष के तौर पर, फ़ासीवाद-विरोधी संघर्ष पूँजीवाद-विरोधी संघर्ष की ही एक अविभाज्य कड़ी है, उसका जैविक अंग है।

आज देशव्यापी स्तर पर जो जन-ज्वार उठ खड़ा हुआ है, वह स्वतःस्फूर्त है। स्वतःस्फूर्त आन्दोलनों की अपनी एक सीमा होती है, पर यह सीमा लाँघी न जा सके, ऐसा नहीं होता है। अगर क्रान्तिकारी शक्तियाँ सूझ-बूझ, मेहनत और धीरज से स्वतःस्फूर्त जनान्दोलनों में शिरक़त करती हैं तो उन्हें वे राजनीति की पाठशाला और प्रशिक्षणशाला बनाकर सीखती हैं और जनता के बड़े, या कम से कम महत्वपूर्ण हिस्से को सही राजनीति की अगुवाई में लाने में कामयाब होती हैं। यह उपलब्धि संघर्ष के अगले चक्रों के लिए महत्वपूर्ण होती है।

हमें हिन्दुत्ववादी फ़ासिस्टों के वर्तमान आतंक और ख़ूनी कार्रवाइयों को फ़ासीवाद की ऐतिहासिक भयंकरता के परिप्रेक्ष्य में समझना होगा, तभी हम लोगों को एक लम्बी और निर्णायक लड़ाई में उतरने के लिए कायल कर सकेंगे और उन्हें यह समझा सकेंगे कि अगर वे ऐसा नहीं करते तो सर्वनाश के लिए तैयार रहें। जर्मन चिन्तक वाल्टर बेन्यामिन की यह ऐतिहासिक चेतावनी आज भी सर्वथा प्रासंगिक है : "केवल उसी इतिहासकार को अतीत में से उम्मीद की चिनगारियों को हवा देने का वरदान प्राप्त होगा जो पुरज़ोर ढंग से इस बात का कायल है कि दुश्मन अगर जीत गया तो उससे हमारे मर चुके लोग भी सुरक्षित नहीं बचेंगे। और इस दुश्मन ने फ़तेहमन्द होना अभी बन्द नहीं किया है।"

सियाचिन में खड़े जवान भाजपा के लिए सिर्फ़ वोट बटोरने का साधन हैं!

भाजपा समर्थक बात-बात पर सेना के जवानों की दुहाई देते हैं। नरेन्द्र मोदी पुलवामा के शहीद जवानों के नाम पर वोट माँगने में भी नहीं शर्माते। मगर इन्हीं जवानों की हालत क्या है? भारत के नियंत्रक एवं लेखा महापरीक्षक (सीएजी) की संसद में पेश रिपोर्ट के मुताबिक सियाचिन, लद्दाख, डोकलाम जैसे ऊँचे क्षेत्रों में तैनात सैनिकों को ज़रूरत के अनुसार कैलोरी वाला भोजन नहीं मिल रहा। उन्हें वहाँ के मौसम से निपटने के लिए जिस तरह के ख़ास कपड़ों की ज़रूरत होती है उसकी ख़रीद में भी काफ़ी देरी हुई। अभी सशस्त्र सीमा बल के 90,000 जवानों को जनवरी और फ़रवरी के वेतन के साथ उनके भत्ते नहीं मिलेंगे क्योंकि सरकार के पास पैसे नहीं हैं! कहने की ज़रूरत नहीं कि पैसे की कमी से मंत्रियों के ऐशो-आराम में कोई फ़र्क़ नहीं पड़ेगा। पर जवानों के लिए पैसे नहीं हैं। कई शहीद जवानों की पत्नियों को उनके लिए घोषित मुआवज़े की रकम पाने के लिए दर-दर भटकना पड़ता है और भूख हड़ताल तक का सहारा लेना पड़ता है।

यह भी नहीं भूलना चाहिए कि सेना और अर्द्धसैनिक बलों में जवानों की बुरी हालत पर सवाल उठाने वाले कई जवानों को किस तरह प्रताड़ित किया गया है। और कारगिल की लड़ाई में मरने वाले सैनिकों के लिए ताबूतों की ख़रीद में घोटाला भी भाजपा की सरकार में ही हुआ था! ये परम ढोंगी लोग हैं और केवल अपने मतलब के लिए सैनिकों की दुहाई देते हैं – उसी तरह, जैसे ये हिन्दू हितों की दुहाई देकर अपना उल्लू सीधा करते हैं।

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006